IAS / PCS / JUDICIAL

Rahul's IAS
a blue print of success

विधिशास्त्र

लोक सेवा परीक्षा

No part of this publication can be reproduced or transmi ted in any form or by any means, without prior permission of the Publisher.

B- 9, Ist Floor, Commercial Complex,
Above Bank of Maharashtra, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-9
E-mail: rahuls_ias@rediffmail.com

विधिशास्त्र
JURISPRUDENCE

प्रकरणों का विखंड –

- विधिशास्त्र और विधिक सिद्धांत की भूमिका
  - विधिशास्त्र की प्रकृति
  - विधिशास्त्र का मूल्य
  - विधिशास्त्र की परिभाषायें
- विधि (विभिन्न विचारधाराएं) की परिभाषाएं
  - आदर्शवादी विचारधारा
  - प्रमाणवादी विचारधारा
  - समाजशास्त्रीय विचारधारा
- विधिशास्त्र के विचारधाराएं
  - ऐतिहासिक विचारधारा
  - विश्लेषणात्मक विचारधारा
  - समाजशास्त्रीय विचारधारा
  - दार्शनिक विचारधारा
  - प्राकृतिक विचारधारा
  - यथार्थवादी विचारधारा
  - विधि के विशुद्ध सिद्धांत
  - एन्थ्रोपोलोजिकल विचारधारा (Anthropological School)
- विधि के स्रोत
  - रूढ़ि
  - पूर्व-निर्णय
  - विधान
- अधिकार और कर्तव्य
- व्यक्तित्व
- स्वामित्व
- कब्जा
- न्याय का प्रशासन
  - संकल्पना
  - शास्ति के सिद्धांत

एक टिप्पणी –

विधिशास्त्र एक वह नियम है जो सिविल सेवा परीक्षा की केवल प्रारंभिक परीक्षा के अन्तर्गत आते हैं। इसलिए, प्रत्याशियों को यह सुझाव दिया जाता है कि वे विषय की अत्यधिक गहराई में न जायें। ज्ञात हो कि प्रारंभिक परीक्षा में विधिशास्त्र से संबद्ध करीब-करीब 20 प्रश्न पूछे जाते हैं। मोटे तौर पर, आप से लगभग 12-13 तथ्यात्मक प्रश्न पूछते हैं जो कि संबंधित होते हैं –

1. परिभाषाएं एवं कथन
2. विधिवेत्ता एवं उनके विचारधारायें
3. पुस्तकें एवं लेखक
4. कुछ वाद (विशेषकर अध्याय 'कब्जा' से संबंधित) आदि।

PCJURIS

अन्य 7 से 8 प्रश्न विशुद्ध रूप से संकल्पना आधारित होते हैं जिसमें आपकी विषयवस्तु की समझ की जांच की जाती है। ऐसे प्रश्नों में, यह सुझाव दिया जाता है कि प्रत्याशी निरसन (elimination) प्रक्रिया को अपनायें। इस प्रकार के प्रश्नों के लिए, प्रत्याशियों से अपेक्षा की जाती है कि वे उन क्षेत्रों पर अपना ध्यान अधिक केन्द्रित करें जिस पर कथन-कारण प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकते हैं। विशेषतया, विधिशास्त्र के विचारधाराओं का प्रश्न करते समय, विभिन्न विचारधाराओं के बीच अंतर को समझने की शक्ति (understandia) पर सावधानी रखनी चाहिए।

विधिशास्त्र की प्रकृति और मूल्य (Nature and value of Jurisprudence):

विधिशास्त्र मुख्यतया शब्द विधि का सैद्धान्तिक पहलू है। विधिशास्त्र में, हम statutory law के व्यवहारतः प्रयोज्य अंशों से संबंध नहीं रखते हैं, अपेक्षाकृत हम विधि के उसी सार तथा उसके विभिन्न आयामों को समझने का प्रयत्न करते हैं। जैसे कि दूसरे विषयों में, उदाहरण के लिए भूगोल। हमारे पास अध्ययन के विषय के रूप में, भौगोलिक चिंतन है। इसी तरह से, विधि में, हमो पास विधिक चिंतनहै, जिसे 'विधिशास्त्र' कहते हैं।

विधिशास्त्र में मूलभूत प्रश्न जिसका उत्तर देने का प्रयत्न करते हैं वह है - विधि क्या है? इसे अस्तित्व में क्यों रहना चाहिए? विधि की प्रकृति एवं उद्देश्य क्या होना चाहिए? अधिकार और कर्तव्य क्या हैं और उनकी क्या प्रकृति होनी चाहिए? स्वामित्व और कब्जा क्या है और विधि उन्हें संरक्षण क्यों देती है? आदि।

विधिशास्त्र विधि में एक निश्चित प्रकार की जांच या अन्वेषण को संदर्भित करता है। सामान्य प्रकृति की एक जांच, जिसका उद्देश्य विधि और विधिक पद्धति के अन्तर्निहित और आवश्यक सिद्धांतों को प्रकट करना है जबकि एक विशेष विधिक विषय जैसे संविदा के अन्तर्गत विधिक नियमों और सिद्धांतों के अध्ययन आते हैं जो प्रमाणित स्रोतों तथा व्यवहारिक स्थिति में इसके प्रयोग से उद्भूत किये गये हैं।

इस प्रकार, जबकि विधि की संविदा संविदा करने वाले अन्य पक्षकार के विरुद्ध संविदा के एक पक्षकार के अधिकार का वर्णन करती है। विधिशास्त्र में, पद 'अधिकार', में अन्तर्निहित अर्थ और विधिक अधिकारों के विभिन्न प्रकार की प्रकृति के अध्ययन पर बल दिया जाता है।

विधिशास्त्र के मूल्य -

सामान्यतः, विधिशास्त्र का प्रयोग व्यवहारिक परिस्थितियों में नहीं किया जा सकता है। अब प्रश्न उठता है - अमूर्त विषय जैसे विधिशास्त्र में क्या संभव मूल्य हो सकता है?

सामंड ने अपनी पुस्तक 'Treaties on Jurisprudence' में विधिशास्त्र के निम्न अनुप्रयोगों का वर्णन किया है -

1. विधिशास्त्र का मूल्य उसके अपने ही आन्तरिक हितों में अन्तर्निहित होता है - जबकि किसी विषय का आकर्षण तथापि उसके गुण का प्रत्याभूति नहीं है, लेकिन जब विधिशास्त्र में अनुसंधान किया जाता है तो इसका संपूर्ण विधिक, राजनीतिक और सामाजिक चिंतन पर अच्छा प्रभाव पड़ सकता है।
2. विज्ञान और गणित की तरह, प्रगति वृहत् तौर पर अवच्छावच्छेद (generalization) के कारण हुई है, विधि में भी, व्यापकता (generality) का अभिप्राय सुधार हो सकता है। विधिशास्त्र के कई कार्यों में से एक प्रबंधकीय संकल्पना का निर्माण करना तथा उसका विवेचन करना है जो विधि के जटिलताओं को अधिक प्रबन्ध योग्य और व्यवस्थित बनाना है।
3. विधिशास्त्र का शैक्षिक मुण होता है। विधिक संकल्पनाओं के तार्किक विश्लेषण और विधिशास्त्र का अध्ययन औपचारिकवाद के दुर्गुण को समाप्त करने में सहायता करते हैं। यहां सामाजिक यथार्थताओं के अपेक्षाकृत विधिक रूप पर बल दिया जाता है और किसी व्यक्ति को विधि के सामाजिक कार्यों से अवगत कराया जाता है।

विधिशास्त्र की विचारधाराएं -

विधिशास्त्र की विचारधाराएं 'विधि की प्रकृति' की समस्या की ओर प्रयुक्त विधिवेत्ताओं के विभिन्न उपागमों (approaches) का परिणाम है।

विधिशास्त्र की परिभाषाएं -

विधिशास्त्र का अध्ययन सबसे पहले रोम में प्रारंभ हुआ। 'विधिशास्त्र' लेटिन शब्द 'जुरिसप्रुडेंशिया' से उद्भूत है। जुरिस का अभिप्राय विधि (legal) और प्रुडेंशिया का अभिप्राय ज्ञान या कौशल है। प्रारंभ में विधिशास्त्र और नैतिकता की गड़बड़ी (confusion) बनी थी परन्तु 19वीं सदी में संकल्पना में धर्मनिरपेक्षता के तत्वों का समावेश हो गया। इंग्लैंड में, ऐसा बेन्थम और उसके शिष्य ऑस्टिन के समय तक नहीं था; 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में यह शब्द तकनीकी महत्व विधिशास्त्र को परिभाषित करने के लिए कई प्रयत्न किये गये हैं जो निम्नलिखित हैं -

Paulus (रोमन विधिवेत्ता) - विधि नियम (Rule) से निकाली नहीं जानी है; बल्कि नियम विधि से निकाला जाना है।

Hobbes - इनकी पुस्तक 'Elementiae Philosophiae' राष्ट्रीय (national) विधि, राजनीतिक सरकार और सम्प्रभुता (sovereignty) की प्रकृति के विषय में वर्णन करती है।

Blackstone - विधिशास्त्र विधि विज्ञान का अध्ययन है।

Bentham (1748-1832) - बेंथम के संबंध में कुछ बिन्दुएं -

उन्होंने विधि के परीक्षणों (examinations) के बीच अन्तर को बताया है क्योंकि यह expositional है और इसे censorial होना चाहिए।

उनका सिद्धांत उपयोगितावादी व्यक्तिवाद (Utilitarian individualism) कहलाता है। उसने विधि निर्माण करने वाली प्रक्रिया, न्याय के प्रशासन की असक्षमता और भ्रष्टाचार की आलोचना की। आगे उसने कहा कि विधि का काम व्यक्ति की स्वतंत्रता पर लगे बन्धनों एवं अवरोधों से उसे मुक्त करना है। जब व्यक्ति एक बार स्वतंत्र हो जाएगा तो अपने कल्याण की स्वयं देखभाल करेगा। इस रूप में वह अर्थशास्त्र के अहस्तक्षेप-नीति (laissez faire) का समर्थक था। उसने संहिताकरण की वकालत की और न्यायाधीश निर्मित विधि और रुढ़ियों आदि की निंदा की। वह उपयोगितावादी भी था। उसके अनुसार विधान का उद्देश्य सर्वाधिक संख्या के व्यक्तियों का सर्वाधिक सुख है (greatest happiness of greatest number)। उसने उपयोगिता की परिभाषा इस रूप में भी कि "यह किसी वस्तु का वह गुण या प्रवृत्ति है जो किसी अनिष्ट को रोकता है या किसी भलाई को प्राप्त कराता है।"

सुख और दुख का सिद्धांत - विधि का उद्देश्य सुख को प्राप्त करना और दुख का त्याग करना है। बेन्थम ने "felicit calculus" की संकल्पना दी है - इसके अन्तर्गत, बेन्थम ने एक चार्ट प्रस्तुत किया जिसके अनुसार सुख और दुख की गणना की जा सकती है।

Friedman ने अपनी पुस्तक "Legal Theory" में बेन्थम की सही वृतांत में आलोचना की है।

1. एक बेन्थम का अमूर्त (abstract) और अव्यावहारिक (doctrinaire) तर्कनावाद (rationalism) है जो उसे मनुष्य को उसकी पेचीदगी, उसके भौतिकवाद और आदर्शवाद, सौजन्यता और नीचता, स्वार्थपरता और परोपकारिता के समिश्रण में देखने से रोकता है। यह बेन्थम को विधायक की शक्तियों को अधिक आंकने और व्यक्ति के विवेकाधिकार और विधि के लागू करने में लचीलेपन को कम आंकने पर ले जाता है।
2. दूसरी कमजोरी व्यक्ति और समुदाय के हितों के बीच संतुलन की स्पष्ट रूप से अपनी संकल्पना विकसित करने में उसकी असफलता से करती है।

बेन्थम ने विधि की निम्नलिखित परिभाषा दी - "विधि की परिभाषा इस रूप में की जा सकती है कि यह संकेतों का एक समूह है जो राज्य में संप्रभु द्वारा सोची गई अथवा अपनाई गई इच्छा की घोषणा करता है, जो कतिपय मामले में कतिपय उन व्यक्तियों अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा

आचरण के बारे में होता है जो प्रश्नगत मामले में उसकी शक्ति के अधीन होते हैं या माने जाते हैं; ऐसी इच्छा का पालन किया जाना उन कतिपय घटनाओं (परिणामों) पर होता है जिसके बारे में यह आशा की जाती है कि वह घोषणा उसे ला सकती है और उन घटनाओं के बारे में यह आशा की जाती है कि वे उन पर हेतु के रूप में कार्य करेंगे जिनका आचरण विचार में होता है।"

जोन डी. फिन्च ने अपनी पुस्तक "Introduction to Legal Theory" में बेन्थम की इस प्रकार से आलोचना की है - "बेन्थम के साथ विधिक विधात्मकि (Legal Positivism) का आरंभ हुआ और इसके साथ तर्क आधारित अनुमान (rational conjecture) से भिन्न खोज के विज्ञान के रूप में विधिक सिद्धांत की स्थापना हुई। बेन्थम ने इस नए दृष्टिकोण की नींव रखी, किन्तु विधात्मक (positive law) की प्रकृति से संबंधित समस्याओं का समाधान बताने से दूर, उसका कार्य एक बहुत लंबे और विवधतापूर्ण बहसों के सिलसिले का प्रारंभ था जो अब भी चल रही है।"

सामण्ड - विधिशास्त्र सिविल विधि के मूल सिद्धांतों का विज्ञान है। सामंड के अनुसार, विधिशास्त्र राज्य की विधि का वर्णन करती है जिसके अन्तर्गत वैसे नियम होते हैं जो न्याय के प्रशासन में न्यायालयों द्वारा प्रयुक्त किये जाते हैं। विधि तीन प्रकार की होती है जो मानव के आचरण पर शासित करते हैं -

1. विधि जो धर्मशास्त्र से उद्भूत होती है।
2. विधि जो नैतिकता से उद्भूत होती है।
3. विधि जो राजनैतिक रूप से संगठित समाज से उद्भूत होती है।

सच्ची विधि वैसी विधि है जो राजनैतिक रूप से संगठित समाज में बने रहती है, और सामंड इसे सिविल विधि कहते हैं, उस विधि की अध्ययन विधिशास्त्र में अध्ययन के लिए समयुक्त विषय है।

सामंड अपनी परिभाषा में मुख्य रूप से शामिल करते हैं -

1. विश्लेषणात्मक विधिशास्त्र (सामंड कहते हैं कि उनकी पुस्तक आवश्यक रूप से विश्लेषणात्मक विधिशास्त्र से संबंधित है)
2. ऐतिहासिक विधिशास्त्र
3. नीतिशास्त्र विधिशास्त्र

वे विधिशास्त्र को सामान्य (generic) और विशिष्ट (specific) दोनों अर्थ में प्रयोग करते हैं। पूर्ववर्ती के अन्तर्गत विधिक सिद्धांतों का संपूर्ण समूह आता है जबकि पश्चात्वर्ती का अभिप्राय ऐसे सिद्धांतों के केवल एक विशिष्ट विभाग से है। पश्चात्वर्ती के अर्थ में इसको सिद्धांतिक (theoretical) या सामान्य (general) विधिशास्त्र कहा जाता है। सामंड कहता है कि उसकी पुस्तक केवल विधिशास्त्र से सरोकार रखती है जिसे वह सिविल विधि के मूल सिद्धांतों का विज्ञान कह कर परिभाषित करता है।

सामंड ने दूसरा वर्गीकरण इस प्रकार किया है -

1. व्यष्टि हेतुक (Expository) या प्रणालीबद्ध (systematic) विधिशास्त्र, जो ऐसी किसी वास्तविक विधि की पद्धति के तत्वों का विवेचन करता है जो कि किसी समय मौजूद हो, चाहे भूतकाल या वर्तमान में।
2. विधिक इतिहास, जो किसी विधि प्रणाली के ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया का विवेचन करता है।
3. विधान का विज्ञान, जिसका उद्देश्य ऐसी विधि बनाना है जैसी कि यह होनी चाहिए। यह विधि प्रणाली के आदर्श भविष्य और उन प्रयोजनों का जिनके लिए इसका अस्तित्व होता है, वर्णन होता है।

Dias & Hughes - ऑस्टिन - विधिशास्त्र विधात्मक विधि का दर्शन है। विधात्मक विधि सिविल विधि के सदृश्य है। (फिर भी, पद 'दर्शन' जिसे ऑस्टिन ने प्रयुक्त किया है, असमुचित है, कहा जाता है, क्योंकि विधिशास्त्र स्वतः सिविल या मानव निर्मित विधि तक ही सीमित है।)

हॉलैंड्स - यह विधात्मक विधि का प्रारूपिक विज्ञान है'। उनका आगे कहना है कि विधिशास्त्र भौतिक नियमों की बनाय विधि के नियमों द्वारा शासित होने वाले मानवीय व्यवहारों से

इस विवेचन यह स्पष्ट करता है कि सामण्ड द्वारा विधि की परिभाषा उसके प्रयोजन के शब्दों में की गई है। विधि को उसके प्रयोजन के शब्दों में परिभाषित करना विधि की प्रकृति को समझने में सहायक हो सकता है, किन्तु विधि अनेक उद्देश्यों की पूर्ति करती है और इसे केवल 'न्याय' पाने के काम में लगे होने तक सीमित करके सामण्ड ने विधि के क्षेत्र को संकुचित कर दिया है।

सामण्ड की परिभाषा के अनुसार, कोई नियम इसलिये विधि होता है कि न्यायालय इसे मान्यता देंगे, इसे प्रयुक्त करेंगे और इसे लागू करेंगे, बजाय इसके न्यायालय उसे इसलिये मान्यता देंगे, प्रयुक्त करेंगे और लागू करेंगे कि वह विधि। सामण्ड की परिभाषा विधि का एक ऐसा चित्र प्रस्तुत करती है जिसमें विधि न्याय के प्रशासन की पश्चात्कालीन है और इस प्रकार न्यायालयों को अधिक महत्व दिया गया है। सामण्ड की परिभाषा विधिज्ञ के लिए कुछ उपयोग की हो सकती है किन्तु अन्यथा इसका कोई व्यापक प्रयोग नहीं है। किसी परिभाषा को यदि सर्वव्यापी नहीं तो कम-से-कम उसका बहुत व्यापक प्रयोग भी होना चाहिए और सामण्ड की परिभाषा बहुत संकुचित है। यह केवल इंग्लैंड के कॉमन लॉ को लागू करती है जो कि न्यायाधीश-निर्मित विधि है।

विध्यात्मवादी परिभाषा (Positivist definition):

ऑस्टिन के अनुसार, विधि उन नियमों का समूह है जो राजनीतिक रूप से श्रेष्ठ प्रकार के मनुष्यों द्वारा राजनैतिक रूप से अधीनस्थ प्रकार के मनुष्यों के लिये बनाये गये हैं। दूसरे शब्दों में, विधि सम्प्रभु का समादेश है। इस प्रकार, समादेश कर्तव्य और अनुशास्ति विधि के तीन तत्व हैं। वह विधि जिसमें वे तीन तत्व या विशेषताएं होती हैं, विध्यात्मक कहलाती हैं। वह 'विध्यात्मक विधि' का 'विध्यात्मक नैतिकता' और अन्य प्रकार के नियमों से, जिनको भी 'विधि' कहा जाता है, भेद करता है। उसकी परिभाषा की अनेक आधारों पर आलोचना की गई है जो निम्नलिखित है -

आलोचना -

1. कि समस्त विधि समादेश नहीं है।
2. कि विधि का बहुत भाग निर्बन्धनात्मक (restrictive) होने की अपेक्षा समर्थकारी (enabling) हैं। (इसका अर्थ यह है कि यह कर्त्तव्य नहीं है)
3. कि यह केवल अनुशास्ति ही नहीं होती है जो विधि का पालन संभव बनाती है, अपितु अन्य बातें भी होती हैं।
4. ऑस्टिन की परिभाषा के अन्तर्गत रूढ़ियां और अन्तर्राष्ट्रीय विधि नहीं आती हैं, क्योंकि उनमें वे सभी आवश्यक तत्व नहीं हैं जो ऑस्टिन के अनुसार, 'विधि' में होने चाहिये। उसने विधि के सामाजिक पहलू भी और उन मानसिक तत्वों की जो विधि के पालन को सुनिश्चित करते हैं, पूर्णतः उपेक्षा की।

केल्सन - केल्सन विधि को अमानसकीय (depsychological) समादेश के रूप में परिभाषित करता है, यद्यपि केल्सन समादेश के शब्दों में विधि की परिभाषा करता है किन्तु वह ऑस्टिन से एक बिल्कुल भिन्न अर्थ में इसका प्रयोग करता है। समादेश से उसका केवल यह अभिप्राय है कि यह एक कर्तव्य अधिशोषित करता है। ऑस्टिन का सम्प्रभु केल्सन की परिभाषा में स्थान नहीं पाता है।

सामाजशास्त्रीय परिभाषा (Sociological definitions):

वे विधि की परिभाषा समाज के साथ इसके संबंधों के शब्दों में देते हैं।

ड्यूगिट (Duguit) विधि के आवश्यक रूप से और अनन्य रूप से एक सामाजिक तथ्य के रूप में परिभाषित करता है। किसी भी अर्थ में यह अधिकारों को कथित करने वाला नियम समूह नहीं है। विधि की आधारशिला सामुदायित जीवन की आवश्यक अपेक्षाओं में है। यह परिभाषा केवल तभी अस्तित्व में रह सकती है जब मनुष्य एक साथ रहें। इसलिये सामाजिक जीवन का सबसे महत्वपूर्ण

तथ्य मनुष्यों की पारस्परिक निर्भरता है। इसको ड्यूगिट 'सामाजिक समेकता' कहता है। सामाजिक संस्थाओं का लक्ष्य यह है कि वे इसकी रक्षा करें और इसे आगे बढ़ाये। केवल वे नियम ही विधि कहे जा सकते हैं जो इस उद्देश्य को आगे बढ़ाते हैं। विधि की मान्यता का आधार जन-स्वीकृति है सम्प्रभु की इच्छा नहीं। सम्प्रभु विधि के ऊपर नहीं है, अपितु वह इससे आबद्ध है। विधि को सामाजिक यथार्थों पर आधारित होना चाहिये।

इहरिंग (Ihering) - विधि समाज के जीवन की स्थितियों की पारंटी है; जो राज्य की बाध्यता की शक्ति द्वारा सुनिश्चित किया जाता है। इस परिभाषा से तीन बातें निकलती हैं -

1. इस परिभाषा में विधि को सामाजिक नियंत्रण का केवल एक साधन माना गया है।
2. यह कि विधि एक सामाजिक प्रयोजन की पूर्ति करने के लिये है।
3. यह कि इसकी प्रकृति बल प्रयोग (coercive) की है। दूसरे शब्दों में, विधि का पालन राज्य द्वारा बाह्य बाध्यता के माध्यम से सुनिश्चित किया जाना है।

एहरलिच (Ehrlich) - वह अपनी परिभाषा में उन सब मानों (norms) को सम्मिलित करता है जो किसी निर्दिष्ट समाज में सामाजिक जीवन को शासित करते हैं। इस परिभाषा की प्रवृत्ति उन क्षेत्रों को अपने अन्तर्गत लाने की है जहां विधि, विधि न रहकर समाजशास्त्र बन जाती है।

पाउण्ड (Pound) - यह "सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये एक सामाजिक संस्था" है। यह अध्ययन के नवीन क्षेत्रों की ओर अग्रसर की गई है और यह सामाजिक समस्याओं के सन्दर्भ में विधि के अध्ययन के लिये एक रचनात्मक योजना कथित करता है।

यथार्थवादी आन्दोलन (Realist Movement):

यथार्थवादी आन्दोलन (संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रयोज्य है), जो समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का ही एक अंग माना जाता है, विधि की परिभाषा न्यायिक प्रक्रिया के शब्दों में करता है। न्यायमूर्ति होम्स (Holmes), जिनकी कृतियों में कुछ लेखकों के अनुसार, यथार्थवादी आन्दोलन के बीज पाये जाते हैं, कहता है कि "इसके बारे में भविष्य-कथन कि न्यायालय वस्तुतः क्या करेंगे, और कोई अन्य दावा नहीं, वह बात है जो मैं विधि का अर्थ समझता हूं।" जेराम फ्रेंक लिवेलिन, कार्डोजो और अन्य विधिशास्त्रियों ने इस पर अपने सिद्धांतों को खड़ा किया है। उनके अनुसार, औपचारिक विधि केवल इस बात का एक अनुमान है कि न्यायालय क्या विनिश्चित करेंगे और विधि वही है जो कि न्यायालय वस्तुतः विनिश्चित करते हैं। अन्तिम विश्लेषण के रूप में, सभी परिभाषाओं को एक साथ देखा जा सकता है। इन सभी परिभाषाओं का संयुक्त रूप निम्नलिखित हैं -

1. विधि राज्य की स्थिति को मानकर चलती है। बिना राज्य के भी विधि हो सकती है, जैसे - आदिम विधि, किन्तु 'विधि' शब्द के आधुनिक अर्थ में राज्य भी सम्मिलित है।
2. राज्य उन नियमों को बनाता है, या बनाने को प्राधिकृत करता है, मान्यता देता है, या मंजूरी देता है, जिन्हें विधि कहा जाता है।
3. नियमों के प्रभावी होने के लिए उनके पीछे अनुशास्ति होती है।
4. वे नियम (जो विधि कहलाते हैं) किसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए बनाये जाते हैं। वह प्रयोजन सामाजिक प्रयोजन हो सकता है, या यह केवल किसी तानाशाह के किसी व्यक्तिगत उद्देश्य की पूर्ति का हो सकता है।

ऐतिहासिक विचारधारा (Historical School):

विधि के इस ऐतिहासिक विचारधारा का जन्म 19वीं सदी के प्रारंभ में हुआ। ऐतिहासिक विचार धारा से तात्पर्य उस विधिक विचार से है जिसको चलाने वाला सेविग्नी (Savigny) को माना जाता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण का आधार रोमन विधि में निहित है। मोन्टेस्क्यू (Montesquieu) ने ऐतिहासिक विचारधारा का पूर्वानुमान किया और अभिकथित किया कि विधियां जलवायु, स्थानीय स्थितियों, संयोग (accident) अथवा थोपने (imposture) द्वारा निर्मित होती हैं। मेन (Maine)

उसको उस सर्वप्रथम विधिशास्त्री के रूप में वर्णित करता है जो ऐतिहासिक रीति (historical method) को लेकर आगे बढ़ा।

बर्क (Burke) ने चेतावनी दी कि "भूत के पाठों को आत्मसात किये बिना भविष्य के लिए योजना (schemes) नहीं बनानी चाहिए।" उसके अनुसार, विधि एक क्रमिक और शारीरिक विकास जैसी प्रक्रिया (organic process) की उपज है।

ह्यूगो (Hugo) - ह्यूगो के मतानुसार विधि समुदाय विशेष की भाषा तथा आचार की भांति अपना रूप स्वयं ग्रहण करती है और स्वयं को परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर विकसित होती रहती है। विधि के संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि वह जनता द्वारा स्वीकृत और विनियमित की जाती है और जनता द्वारा ही उसका अनुपालन किया जाना आवश्यक है।

जर्मनी को ऐतिहासिक विचारधारा का पालना कहा जाता है। फ्रांसीसी क्रान्ति के दौरान 'नैपोलियन कोड' जर्मनी के अनेक भागों में प्रवृत्त रहा। लगभग 1814 ई. में हेडलबर्ग के प्रोफेसर की बात द्वारा जर्मन विधियों के संहिताकरण के लिए प्रस्ताव का प्रतिपादन किया गया। उसने महसूस किया कि विधियों का संहिताकरण होना चाहिए तथा उस संहिता के अन्तर्गत सभी विधिक सिद्धांत सम्मिलित होने चाहिए।

थी बॉट के इस विचार का सैविनी द्वारा अपने निबन्ध On the Vocation - Vom Beruf (1814 में) में, कड़ा विरोध किया गया।

ऐतिहासिक विचारधारा की उत्पत्ति के कारक -

1. यह प्राकृतिक विधि-सिद्धांतों के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी।
2. यह तर्कवाद (rationalism) के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी। इसने सुझाव दिया कि जो सुसंगत है वह है वर्तमान की आवश्यकता और भूत का कोई सन्दर्भ नहीं होना चाहिये।
3. यूरोप में नेपोलियन के विजयों ने राष्ट्रीयता की उग्र भावना को जन्म दिया। इसने ऐतिहासिक विचारधारा के विकास में सहायता की। यह ऐतिहासिक विचारधारा राष्ट्रीय रीति-रिवाजों में भी गर्व महसूस करती है।
4. यह हडेलबर्ग के प्रो. थीबॉट के संहिताकरण के प्रस्ताव के विरुद्ध प्रतिक्रिया की। ऐतिहासिक विचारधारा ने सुझाव दिये कि संहिताकरण के द्वारा विधि स्थिर हो सकती है और वह विधि जो स्थानीय रिवाजों से उद्भूत हुई है, उसका संहिताकरण नहीं हो सकता है।

सेविग्नी के सिद्धांत -

1. Savigny's Theory:

सेविग्नी के अनुसार -

विधि का स्रोत 'वोल्कजीस्ट' है - जर्मनी में संहिताकरण के विचार पर उसने आक्षेप किया क्योंकि वह समकालीन संहिताओं के दोषों को जानता था। उसका कहना था कि उस समय जर्मन विधि के विकास के लिए संहिता उपयुक्त साधन नहीं थी। विधि लोक-जीवन से उत्पन्न होती थी, यह इसकी भावना की अभिव्यक्ति है। विधि का स्रोत सामान्य लोक-चेतना (Volkegeist) में है।

विधि भाषा की भांति विकसित होती है - विधि इतिहास पूर्व (pre-historic) है। सभी समुदायों में यह उनकी भाषा, आचार और राजनैतिक संगठन की भांति पहले से ही कायम होती है। उन सभी पर एक राष्ट्रीय चरित्र (national character) की छाप होती है। वे लोक-जीवन (popular life) की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है और किसी भी रूप में मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा से उत्पन्न नहीं होती है।

विधि का भी राष्ट्रीय चरित्र होता है - विधि, भाषा, रूढ़ि और सरकार का अलग-अलग अस्तित्व नहीं होता है। किसी भी राष्ट्र में केवल एक बल और शक्ति होती है और यह इन सब संस्थाओं (institutions) की आधार-भूमि होती है। भाषा की भांति ही विधि भी किसी राष्ट्र के जीवन के साथ ही विकसित होती है।

विधि का आरंभिक विकास स्वतः होता है - विधि के विकास के विषय में सेविग्नी कहता है कि आरंभिक प्रक्रमों (stage) पर विधि का विकास आन्तरिक आवश्यकता (internal necessity) के सिद्धान्त के अनुसार अपने आप होता है। समाज की सभ्यता के कतिपय प्रक्रम पर पहुंच जाने के पश्चात्, राष्ट्रीय क्रिया-कलाप के विभिन्न पहलू जो अब तक समग्र रूप में विकसित होते रहते हैं, विभिन्न शाखाओं में विभाजित हो जाते हैं और वे विशेषज्ञों, जैसे विधिशास्त्रियों, भाषाशास्त्रियों और वैज्ञानिकों द्वारा हाथ में ले लिये जाते हैं। विशेषज्ञों के हाथों में ये विषय विचारों में अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध, अधिक पूर्ण और तकनीकी (technical) बन जाते हैं, विधि अन्य विषयों की भांति अब दुहरा अस्तित्व ग्रहण करती है; "एक ओर एक सामान्य राष्ट्रीय जीवन होता है, दूसरी ओर विधिशास्त्रियों का सुभिन्न विज्ञान होता है। विधि का लोगों के सामान्य जीवन के साथ संबंध उसका राजनीतिक तत्व कहा जा सकता है, न्यायशास्त्रीय विज्ञान (Juristic science) के साथ उसका संबंध तकनीकी तत्व है। इन दो तत्वों के सह-संबंध में लोगों के जीवन के तत्वों के साथ हेर-फेर होता रहता है किन्तु विधि के विकास में कम या अधिक दोनों भाग लेते हैं।"

रोमन विधि का इतिहास एक उदाहरण है - इस प्रक्रिया के दृष्टान्त के रूप में, वह रोमन विधि के इतिहास को, इसकी आरंभिक सहज बुनियादी बातों (राष्ट्र की सामान्य चेतना की उपज) और पैन्डेक्ट्स (Pandects) की जटिल और तकनीकी विधि की तुलना प्रस्तुत करती है।

सेविग्नी का सिद्धांत -

1. विधि अचेतन (unconscious) और शरीर जैसे (organic) विकास का विषय है। इसलिये, विधि प्राप्त की जाती है, बनाई नहीं जाती।
2. विधि की प्रकृति विश्वव्यापी होने की नहीं है। भाषा की भांति ही वह लोक और काल के साथ बदलती रहती है।
3. रूढ़ि न केवल विधायन (legislation) के आगे चलती है, अपितु यह उससे श्रेष्ठतर है। विधि को सर्वदा लोक-चेतना के अनुरूप होना चाहिये।
4. जैसे-जैसे विधि जटिल होती जाती है, वैसे-वैसे सामान्य चेतना का प्रतिनिधित्व विधिज्ञों द्वारा किया जाता है जो विधिक सिद्धान्तों को निकालते हैं। तथापि विधिज्ञ केवल लोक-चेतना को बताने वाले (mouthpiece) के रूप में काम करते हैं और उनका कार्य विधि को तदनुसार स्वरूप देना होता है। विधान विधि-निर्माण की अन्तिम अवस्था (stage) है और इसलिए विधिज्ञ (lawyer) विधिशास्त्री (jurist) विधायक से अधिक महत्वपूर्ण होता है।

सैविग्नी के सिद्धान्त की आलोचना -

सेविग्नी के सिद्धान्त की अनेक आधारों पर आलोचना की गई है -

1. **सिद्धान्त में असंगति (Inconsistency)** - उसने विधि के राष्ट्रीय स्वरूप पर जोर दिया परन्तु साथ ही उसने एक ऐसी प्रणाली के लिए सिफारिश की जिसके द्वारा रोमन विधि को आधुनिक दशाओं के अनुकूल ढाला जा सके और उसने रोमन विधि के जर्मनी की विधि के रूप में ग्रहण किये जाने की वकालत की। एक ओर तो उसने यह कहा कि विधि की उत्पत्ति लोक-चेतना में होती है, और दूसरी ओर यह तर्क रखा कि रोमन विधि के कुछ सिद्धान्त विश्व-व्यापी रूप में लागू होने योग्य थे। रोमन विधि के सिद्धान्तों को ग्रहण करने के लिए सेविग्नी के विचार का बेसेलर (Beselor), ईकोर्न (Eichorn) और गीयर्क (Gierke) द्वारा उग्र विरोध किया गया। बाद में इस संबंध में राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई और जो संहिता रची गई उसमें अधिकाधिक जर्मन विचार और सिद्धान्त सम्मिलित किये गये।
2. **लोक-चेतना (Volkgeist) विधि का अनन्य स्रोत नहीं** - सेविग्नी का यह कथन कि लोक-चेतना सारी विधि का स्रोत है, सत्य नहीं है। कभी-कभी कोई विदेशी विधि-प्रणाली सफलतापूर्वक दूसरे देश में बैठ जाती है। कभी-कभी कोई अकेला व्यक्ति किसी विधि-प्रणाली को बहुत अधिक प्रभावित करता है जिसे किसी भी प्रकार लोक-चेतना का प्रतिनिधि नहीं कहा जा

3. विधि का ज्ञान धर्माचार्यों के हाथों में - मूल विधि-निर्माताओं की शक्ति क्षीण होने के कारण रूढ़ियों का ज्ञान और प्रशासन एक अल्पसंख्यक वर्ग के हाथ में चला जाता है, जो कि प्राय: धार्मिक स्वरूप का होता है। यह तीसरा प्रक्रम है।
4. संहिताकरण - इसके पश्चात् संहिताओं का युग आता है। अब विधि एक संहिता के रूप में निर्मित (Promulgated) की जाती है; जैसे, 'सोलन का एटिक कोड' (Solon's Attic Code) या रोम में 'ट्वेल्व टेबिल्स' (Twelve Tables)।

मेन के अनुसार, स्थिर समाज (static society) चौथे प्रक्रम से आगे नहीं जाता है। लेकिन प्रगतिशील समाज (progressive societies) चौथे प्रक्रम से आगे जाता है। यह विभिन्न विधियों से होता है -

1. विधिक कल्पितार्थ - विधि के शब्दों में कोई परिवर्तन किये बिना, विधि के समाज की आवश्यकताओं के अनुसार बदलते रहते हैं। उदाहरण के लिए, गोद लेने की विधि। मेन इसके विरुद्ध हैं क्योंकि यह विधि को अधिक जटिल बनाती है।
2. साम्या - इसके अन्तर्गत वे सिद्धांत होते हैं जो विधयात्मक (positive) विधि की अपेक्षा अधिक आदर योग्य माने जाते हैं। इसका उपयोग विधि की कठोरता को कम करने के लिए किया जाता है।
3. विधायन - यह विधि-निर्माण की सर्वाधिक प्रत्यक्ष और प्रणालीबद्ध रीति होती है।

प्रगतिशील समाज अब तक हैसियत से संविदा पर गए हैं।

1. व्यक्तिगत हित (Private interest) - इनमें व्यक्ति संबंधी हित, घरेलू मामलों संबंधी हित, सम्मान एवं प्रतिष्ठा, एकान्तता, इच्छा की स्वतंत्रता आदि शामिल है।
2. लोक हित (Public interest) - इनमें राज्यों के परिरक्षण के हित तथा सामाजिक हितों के संरक्षण के रूप में राज्य के हित का समावेश है।
3. सामाजिक हित (Social interest) - इसमें शान्ति-व्यवस्था तथा सामान्य सुरक्षा बनाये रखने के हित, विवाह जैसी संस्था का अस्तित्व बनाये रखने के हित, सामान्य आचरणों को बनाये रखने के हित, सामाजिक साधनों की रक्षा करने वाले हित, सामान्य प्रगति से संबंधित तथा मानवीय व्यक्तित्व के विकास से संबंधित हितों का समावेश है।

हितों के सिद्धान्त को आगे विकसित करते हुए रास्को पाउण्ड कहते हैं कि कभी-कभी इन विभिन्न हितों में परस्पर टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अत: विधि के माध्यम से परस्पर-विराधी हितों में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिये। रास्को पाउण्ड के अनुसार हितों के परस्पर टकराव को कम करने के लिये विवादों के हल का ऐसा मार्ग ढूंढा जाना चाहिए ताकि उसमें सन्निहित विभिन्न हितों को कम से कम हानि पहुंचे। यही कारण है कि रास्को पाउण्ड ने विधिशास्त्र को सामाजिक विज्ञान कहने की बजाय सामाजिक तकनीक कहना ही अधिक उचित समझा। विधि को 'सामाजिक यांत्रिकी' (Social Engineering), निरूपित करते हुए उन्होंने राज्य की संप्रभुता, अधिकार, कर्तव्य, व्यक्तित्व आदि सैद्धान्तिक 'परिकल्पनाओं' पर विचार करना आवश्यक समझा तथा सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप नई विधिक तकनीक (new legal technique) के विकास की ओर ध्यान केन्द्रित किये जाने की आवश्यकता पर बल दिया।

विधि के कार्य (Tasks of law):

- अधिकतम मानवीय आवश्यकताएं और हितों की पूर्ति।
- हितों का मूल्यांकन करने के लिए विधि का कर्तव्य।
- एलेन (Allen) इसे प्रायोगिक विधिशास्त्र (Experimental Jurisprudence) कहते हैं।

विधिगत अभ्युपगम (Jural Postulates):

ये आधारभूत धारणाएं हैं जो मनुष्य की इच्छाओं, आशाओं तथा मार्गों आदि तत्वों पर आधारित होते हैं। पाउण्ड के अनुसार पांच अभ्युपगम निम्नलिखित हैं -

1. प्रत्येक सभ्य समाज में मनुष्य यह आकांक्षा करता है कि दूसरे लोग उस पर जानबूझ कर आक्रमण न करें।
2. उन्नत सभ्य समाज में मनुष्य यह प्रत्याशा कर सकता है कि तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में उसने जो कुछ पाया या स्वयं के परिश्रम से अर्जित किया है, उसे अपने लाभ के लिये स्वयं के नियंत्रण में रख सके।
3. प्रत्येक सुसभ्य समाज में मनुष्य यह प्रत्याशा कर सकता है कि वह समाज के जिन विभिन्न व्यक्तियों के संपर्क में आता है, वे उसके प्रति सद्भावपूर्ण व्यवहार करें।
4. विकसित समाज में मनुष्य यह आशा करता है कि जो व्यक्ति किसी कार्य को सम्पादित करने में लगा है, वह अपने कार्यों को इतनी सावधानी पूर्वक करे जिससे दूसरों को किसी प्रकार की हानि न पहुंचे।
5. प्रत्येक सभ्य समाज में मनुष्य यह आशा कर सकता है कि वे व्यक्ति जो ऐसी वस्तुएं रखे हुए हैं जिनमें निकल भागने की या पलायन करने की क्षमता है तथा जिनके निकल भागने पर अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों को हानि होने की संभावना है, तो ऐसे व्यक्ति उन वस्तुओं को पूर्णतः नियंत्रण में रखेंगे ताकि वे अन्य व्यक्तियों को हानि न पहुंचा सकें।

हितों के बीच संतुलन कैसे रखें -

- विभिन्न हित एक ही आधार पर आंके जाते हैं।
- यदि किसी हित का अन्तरण किया जाता है, तो ऐसा केवल सामाजिक आधार पर ही होगा। उदाहरण के लिए व्यक्ति की स्वतंत्रता सामाजिक स्वतंत्रता में परिवर्तित हो जायेगी।
- नयी समस्याओं के लिए नई परिस्थितियां उत्पन्न होंगी जिसके लिए विधमान विधि अपर्याप्त होगी। इसलिए न्यायाधीश बिना विधि के ही न्याय करेंगे।

आलोचना -

1. यह केवल विधि के कृत्यात्मक पहलू पर प्रकाश डालता है और विधि की प्रकृति और स्वभाव का अवहेलना करता है।
2. कुछ निश्चित परिस्थितियों में Law pre-exists interests
3. मूल्यांकन की कसौटी की कमी
4. भ्रामक, संतोलक लक्षण (balancing metaphor)
5. न्यायिक सक्रियता (activism) विधायन से बड़ा है पर बल - न्यायपालिका की अपनी सीमायें हैं।

पूर्व के प्रक्रमों में, किसी व्यक्ति की विधिक स्थिति विधि द्वारा निर्धारित उसकी हैसियत से निर्धारित होती है। उदाहरण के लिए, जाति आदि। किन्तु बाद के प्रक्रमों (प्रगतिशील समाज) में हैसियत की कल्पना समाप्त हो जाती है और विधिक स्थिति व्यक्ति की ओर से स्वतंत्र परक्रामण (negotiation) द्वारा निर्धारित होती है।

मेन हैसियत (status) को इस प्रकार से परिभाषित करते हैं "किसी वर्ग-समूह का एक व्यक्ति होने के नाते उस पर कुछ नियत शर्तें होती हैं।" ("A fixed condition due to an individual's belonging to a group") कोई व्यक्तिगत इच्छा नहीं होती है। वह अपनी इच्छा से अपनी हैसियत को नहीं बदल सकता है क्योंकि परिवार एक इकाई है। (पिटर फेमिलियास)

संविदा (Contract):

व्यक्ति महत्वपूर्ण हो जाता है और इसलिए वह किसी संविदा में शामिल हो सकता है। क्योंकि मानव इच्छा महत्वपूर्ण हो जाता है, इसलिए व्यक्ति अपने प्रयासों, सफलताओं और परक्रामणों (negotiations) से अपनी हैसियत का निर्माण कर सकता है।

अभ्यावेदन (Application):

पूर्व में परिवर्तन हैसियत से संविदा पर था। परिणामस्वरूप, अब परिवर्तन संविदा से हैसियत में आ गई है। इसलिए, मेन के सिद्धांत एकदलीय शासन वाले राज्यों में लागू नहीं होते हैं।

हार्ट (विश्लेषणात्मक प्रमाणवादी/प्राथमिक और गौण नियम) [Hart (Analytical Positivist/Primary and Secondary rules)]:

- पुस्तक - विधि की संकल्पना (Concept of law)
- वे एक तरफ, सेविग्नी, एहरलिच और अन्य तथा दूसरी तरफ, ऑस्टिन, केल्सन और अन्य के बीच दूरी को कम करते हैं।
- यह भी कहा जाता है कि हार्ट 'प्राकृतिक विचारधारा' से सम्बन्धित है।
- विधिक प्रणाली के अस्तित्व के लिए दो शर्तें आवश्यक हैं -
  a) वे नियम जो sustemis ultimate criteria of validity के अनुसार वैध हैं और इसका अवश्य पालन होना चाहिये। (प्राथमिक नियम)
  b) मान्यता के नियम। उनका प्रभावी ढंग से प्रतिग्रहण अवश्य होना चाहिए (गौण नियम)। अर्न्तराष्ट्रीय विधि एक 'प्राथमिक नियम' है और इसलिए, यह 'विधि' है।

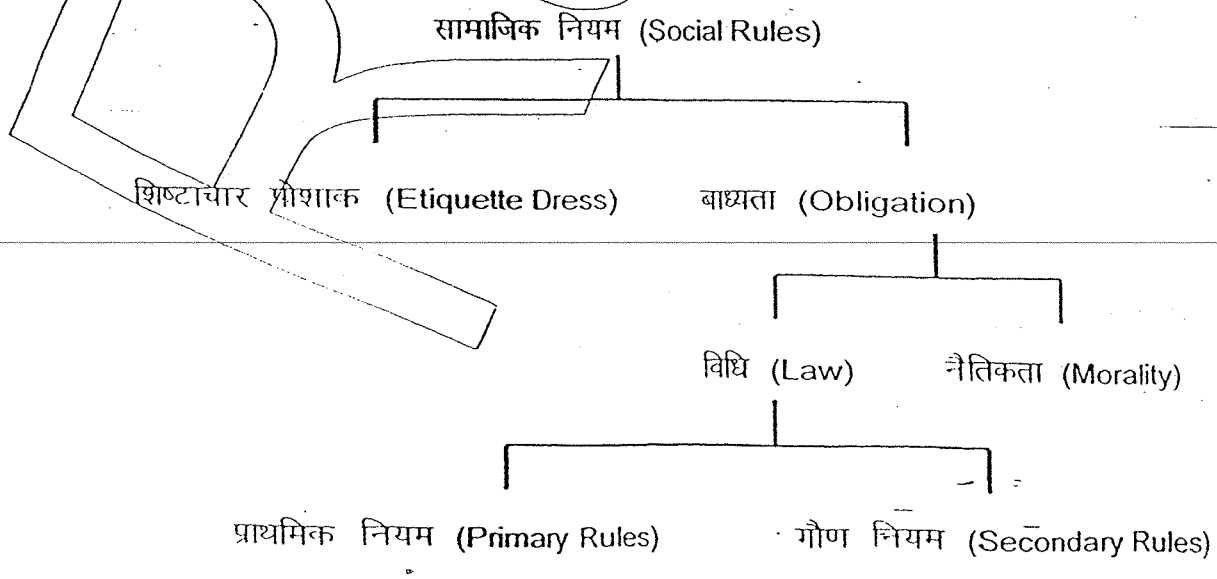
नियमों की प्रणाली के रूप में विधि (Law as a system of rules):

क्या होता है उससे नियम संबद्ध नहीं होते परन्तु क्या होना चाहिए से संबद्ध होना चाहिए वे प्रेसक्रिपटिव (prescriptive) होते हैं अर्थात् वे आचार-संहिता निर्धारित करते हैं। नियमों को आचार-संहिता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह भावना मनोवैज्ञानिक भ्रम नहीं होते हैं और एक व्यक्ति जो नियम द्वारा एक निश्चित ढंग से काम करने के लिए अपेक्षित होते हैं और जो ऐसे व्यवहार पद्धति के अनुरूप होते हैं, उन्हें अन्य से वही अपेक्षा करेंगे।

हार्ट के अनुसार, एक विधिक पद्धति प्राथमिक और गौण नियमों के समूह से निकलती है। प्राथमिक नियम वे होते हैं जो सामान्यतः कर (duties) अभ्यारोपित करते हैं जबकि गौण नियम प्रदान करने वाली शक्ति होती है। हार्ट के अनुसार, यह मान्यता के गौण नियम है जो असम्बद्ध नियमों के एक समूह को एक यूनिफाइड डायनैमिक (unified dynamic) विधिक प्रणाली में स्थानांतरित करते हैं जो सामाजिक परिवर्तन के अनुकूलन में सामर्थ्य होते हैं।

इस प्रकार भारतीय दंड संहिता - प्राथमिक नियम, संविधान-गौण नियम -

- शास्ति (sanction) आवश्यक तत्व नहीं है।
- विधि के सामाजिक रूप से आन्वयिक कार्य (constructive function) पर बल देता है।
- हार्ट (Hart) के नियमों का प्रणाली -



विश्लेषणात्मक विचारधारा (Analytical School):

इसे imperative, positive, teleo-logical, or Austian विचारधारा भी कहते हैं। विश्लेषणात्मक विचारधारा राज्य के साथ विधि के संबंध को बहुत महत्वपूर्ण पहलू के रूप में विचार करती है। यह विधि को उसी रूप में लेती है जिस रूप में राज्य विधि को देता है जिसके प्राधिकार पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है। इस रूप में, यह आज्ञात्मक विचारधारा के रूप में जाना जाता है।

इस विचारधारा के विधिवेत्ता विधि के प्रथम सिद्धांत के विश्लेषण से सम्बद्ध रखते हैं क्योंकि वे विधिक प्रणाली में बने रहते हैं। इस कारण से, यह विचारधारा Positive School कहलाती है। यह विचारधारा इंग्लैंड में है और इसे इंग्लिश विचारधारा के रूप में संदर्भित किया गया है। जैसा कि इस विचारधारा की स्थापना ऑस्टिन द्वारा की गई थी। जैसा कि इस विचारधारा की स्थापना ऑस्टिन द्वारा की गई थी, इसे Austinian School भी कहते हैं। विश्लेषणात्मक विचारधारा समाज के विधिक समस्याओं के प्रति अपने दृष्टिकोण में सकारात्मक (positive) है। विधिक संकल्पना के प्रणालीबद्ध विश्लेषण पर बल इस विचारधारा में परिणित है जिसे 'विश्लेषणात्मक' की संज्ञा दी गई है।

विश्लेषणात्मक विचारधारा ने विध्यात्मक विधि और आदर्श विधि में कठोर भेद किया है। इसने सिविल लॉ की संकल्पना का विश्लेषण किया है और इसके सम्बन्ध को विधि के अन्य रूपों के साथ स्थापित किया है।

ये वे विधियां हैं जो राजनीतिक रूप में वरिष्ठ (superiors) द्वारा अपनी उस हैसियत में अथवा राजनीतिक रूप में वरिष्ठ न होने वाले व्यक्तियों द्वारा किन्तु राजनीतिक रूप में वरिष्ठों द्वारा प्रदत्त विधि अधिकार के अनुसरण (pursuance) में बनाई जाती है।

इस विचारधारा ने विधिक स्रोतों जैसे विधायन, न्यायिक पूर्ण निर्णय और और रूढ़िजन्य विधि को विचार में लिया है और इनमें से प्रत्येक के दावे का अन्वेषण किया है जहां से विधि निकलती है। यह विचारधारा विधिक अधिकारों और विधिक दायित्व की संकल्पना का दीवानी और फौजदारी दोनों में, विश्लेषण करती है। इस विचारधारा के व्याख्यालायों के द्वारा अन्य सहबद्ध समस्याएं जैसे संपत्ति, कब्जा, संविदायें, न्यास, व्यक्तित्व, आशय, हेतु और उपेक्षा का अध्ययन और विश्लेषण भी किया गया है। यह विचारधारा विधि के संहिताकरण का समर्थन करती है।

बेन्थम और ऑस्टिन विश्लेषणात्मक या विध्यात्मक विचारधारा के संस्थापक माने जाते हैं। हालांकि आमतौर पर ऑस्टिन को विश्लेषणात्मक विचारधारा का पिता (father of analytical school) कहा जाता है।

जेरेमी बेन्थम की पुस्तक "The limits of jurisprudence defined" 1782 ई. में लिखी गयी थी परन्तु यह जनता के समक्ष 1945 ई. में पहुंची। इनकी सम्प्रभुता का चिंतन ऑस्टिन के समान था। इनकी विधि की परिभाषा अधीनस्थ विधायन और प्रशासनिक विनियम का समावेश करने के लिए काफी प्रस्तुत की। इनके अधिकार और कर्तव्य के विश्लेषण को एक भ्रूण में रख दिया गया जिसके बारे में कभी सोचा गया था कि यह 20वीं शताब्दी का खोज होगा। वे प्राकृतिक विधि और प्राकृतिक अधिकार के चतमजमदजपवदे को सख्ती से विरुद्ध किया। अधिकार प्राकृतिक नहीं होते हैं लेकिन ये राज्य की विधि द्वारा बनाये जाते हैं।

राज्य का उद्देश्य अधिक से अधिक खुशी और अधिक से अधिक स्वतंत्रता है।" उसने उपयोगिता के परीक्षण का प्रयोग किया और प्रत्येक विधि का यह देखने के लिए परीक्षण करने की इच्छा व्यक्त की कि यदि यह सर्वाधिक संख्या के व्यक्तियों के लिए सर्वाधिक सुख प्रदान करने की ओर ले जाता।

बेंथम अपने उपयोगितावादी सिद्धांत में तीन शर्तें शामिल की हैं -

1. इसे स्पष्ट और यथार्थ अवश्य होनी चाहिए।
2. इसे एकल अवश्य होनी चाहिए और इसमें प्रेरणा पर्याप्त मात्रा में अवश्य होनी चाहिए।
3. इसे नैतिक कैलकुलस (calculus) के द्वारा प्रयोज्य होनी चाहिए।

वे उत्सुकतापूर्वक विधिक प्रणाली के संरचनाओं, संकल्पनाओं तथा कार्यप्रणालियों का परीक्षण करने का प्रयत्न कर रहे थे वे विधिक पदों जैसे, शक्ति, अधिकार, प्रतिषेध, दायित्व और प्रयत्नों का विश्लेषण करते हैं जिससे कि यह दिखाया जाये कि वास्तव में, वे विश्व-व्यवहार में इसका क्या अर्थ समझते हैं।

बेंथम के अनुसार, "विधि की परिभाषा इस रूप में की जा सकती है कि यह संकेतों से पहचाने का एक समूह है जो राज्य में संप्रभु द्वारा सोची गई अथवा अपनाई गई इच्छा की घोषणा करता है, जो कतिपय मामले में कतिपय उन व्यक्तियों अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा आचरण के बारे में होता है जो प्रश्नगत मामले में उसकी शक्ति के अधीन होते हैं या माने जाते हैं।"

बेंथम आगे कहते हैं कि विधि का काम व्यक्ति की स्वतंत्रता पर लगे बंधनों एवं अवरोधों से उसे मुक्त करना है। जब व्यक्ति एक बार स्वतंत्र हो जाएगा तो अपने कल्याण की स्वयं देखभाल करेगा। उसने जोर देकर कहा कि विधि का प्रयोजन सुख को लाना और दुख को दूर करना है। उसने संहिताकरण की भूमिका में दृढ़ता के साथ विश्वास किया क्योंकि न्यायाधीश निर्मित विधि के प्रति उसकी नापसंदगी थी। सुधार करने की उसकी इच्छा उपयोगितावादी सिद्धांत पर आधारित था।

बेंथम के कार्य के दो पक्ष हैं जिसमें से प्रत्येक पृथक विचारधारा निर्मित करते हैं - विधि के विशुद्ध विश्लेषक सिद्धात (pure analyst) जो इस तरह की विधि में रूचि लेते हैं जिसे विधि को अनुसरण करना चाहिए।

आलोचना - विधिकार [सम्प्रभु शक्ति (the sovereign)]:

जॉन ऑस्टिन (John Austin) (1790-1859) - ऑस्टिन ने विधि की परिभाषा इस प्रकार दी है -

"किसी बुद्धियुक्त प्राणी द्वारा किसी बुद्धियुक्त प्राणी के, जो उसकी शक्ति के अधीन हो, मार्गदर्शन के लिए अधिकथित नियम"। ऑस्टिन ने "वह विधि जिसे उचित तौर पर विधि कहा जाता है" और "वह विधि जिसे अनुचित तौर पर विधि कहा जाता है" के बीच भेद किया है।

उसके अनुसार, प्रत्येक विधि संप्रभुताधारी का सामान्य समादेश है जो एक कर्तव्य अधिरोपित करता है जो अनुशास्ति द्वारा लागू कराया जाता है।

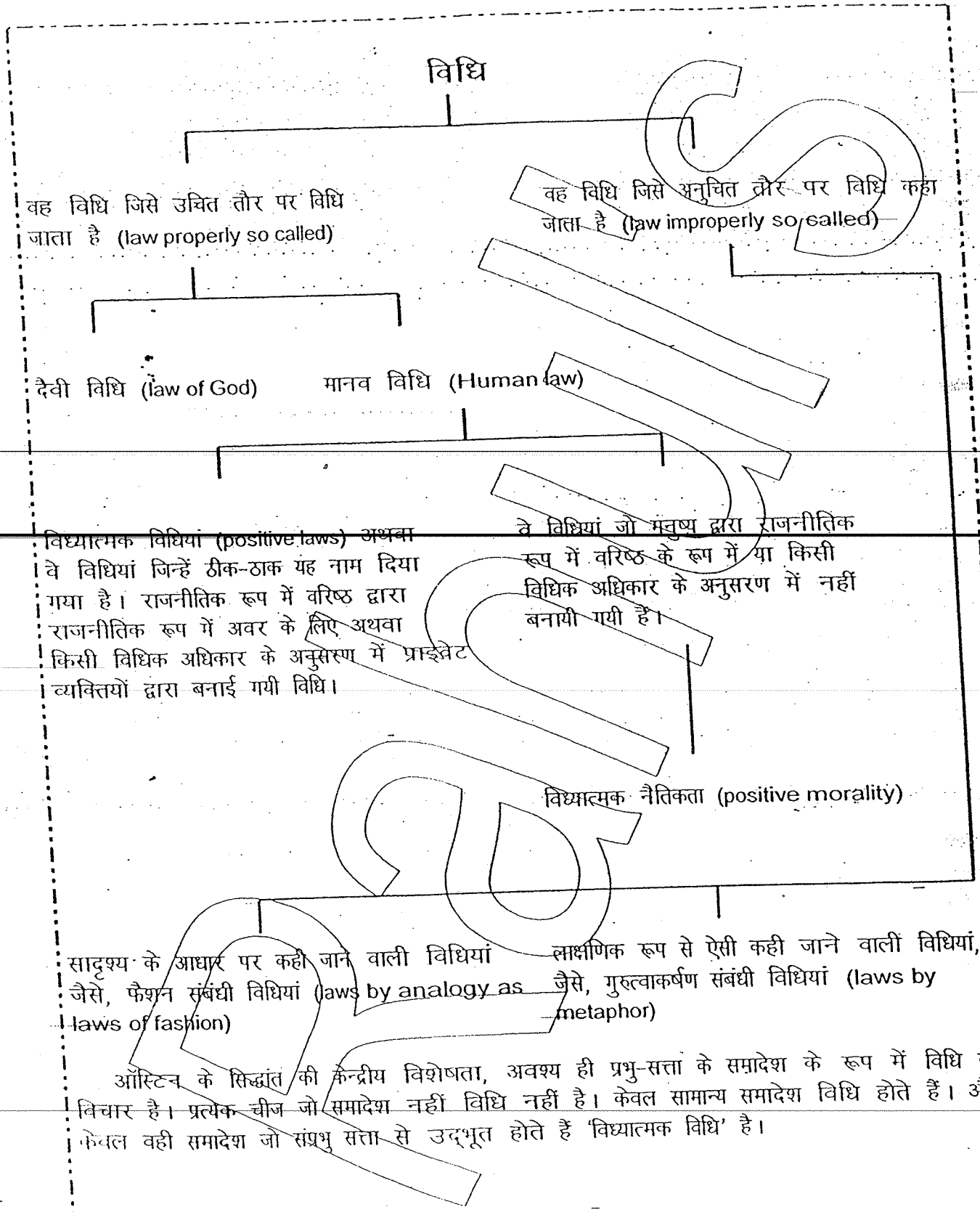
ऑस्टिन के अनुसार विधि के प्रकार -

1. **दैवी विधियां (Laws of God)** - ईश्वर द्वारा मनुष्य के लिए बनाई गई विधियां।
2. **मानव विधियां (Human Laws)** - मनुष्यों द्वारा मनुष्यों के लिए बनाई गई विधियां।
3. "विधि जिसे उचित तौर पर विधि कहा जाता है" ऐसे विधियां हैं जो राजनीतिक रूप से वरिष्ठ द्वारा नहीं बनायी जाती हैं, बल्कि वे सादृश्य के आधार पर कही जाने वाली विधियां हैं।

उदाहरण के लिए -

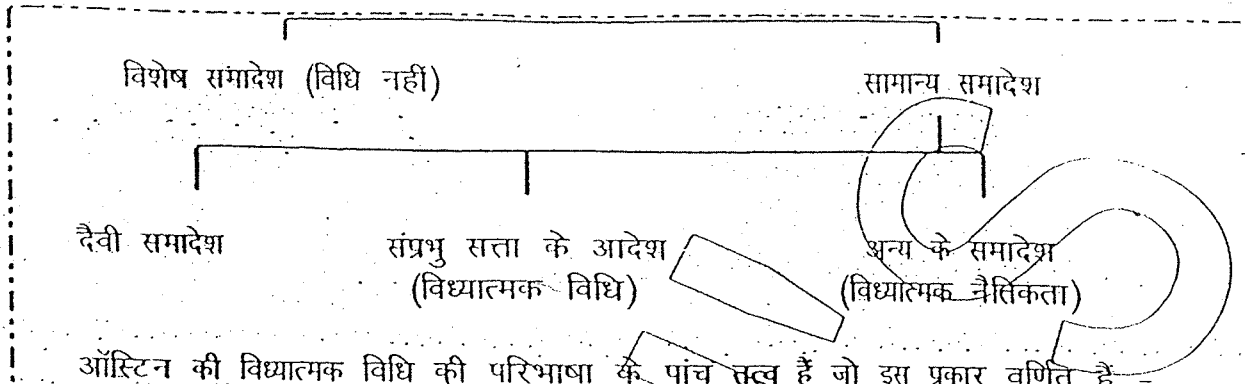
1. केवल विचार द्वारा स्थापित और प्रवृत्त विधि।
2. फैशन संबंधी विधियां।
3. अर्न्तराष्ट्रीय विधियां।

ऑस्टिन के परिभाषित विधिशास्त्र के क्षेत्र (Austin's Province of Jurisprudence Defined):



ऑस्टिन के सिद्धांत की केन्द्रीय विशेषता, अवश्य ही प्रभु-सत्ता के समादेश के रूप में विधि का विचार है। प्रत्येक चीज जो समादेश नहीं विधि नहीं है। केवल सामान्य समादेश विधि होते हैं। और केवल वही समादेश जो संप्रभु सत्ता से उद्भूत होते हैं 'विधात्मक विधि' है।

ऑस्टिन के समादेश



ऑस्टिन की विधात्मक विधि की परिभाषा के पांच तत्व हैं जो इस प्रकार वर्णित है –

1. इच्छा
2. अनुशास्ति
3. इच्छा की अभिव्यक्ति
4. सामान्यता, और
5. संप्रभु सत्ता।

or

L = W + S + E + G + S

समादेश के रूप में विधि पर यह आग्रह (insistence) ऑस्टिन के सिद्धांत पर आक्षेप का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। यह विधिशास्त्र के क्षेत्र से न केवल रीतिगत, सांविधानिक अर्थ अंतर्राष्ट्रीय विधि को बाहर करने की अपेक्षा करता है।

बेन्थम, दूसरी ओर, तर्क देते हैं कि समादेश पांच विधियों में से एक है जिसके द्वारा संप्रभु (sovereign) विधि विधान बनाता है।

वे वह विधि जो कुछ निश्चित आचरण (आज्ञात्मक विधि) को समादेशित या निषेधित करती है तथा वे विधायों जो कुछ निश्चित आचरण की अनुमति देती हैं के बीच भेद बताते हैं। सामान्य तौर पर विधियों में, बेंथम दंड और सिविल विधियों के बीच के अन्तर से सरोकार रखते हैं। प्रत्येक विधि का दंड और सिविल समूल्य है; इस प्रकार संपत्ति के अधिकार के संबंध में – एक दंड तत्व होता है।

दूसरे शब्दों में, स्वामी का अधिकार सेत के साथ दस्तंदाजी के विरुद्ध सामान्य (दंड) निषेध से उद्भूत किया गया है। स्वयं स्वामी को, अवश्य, इस निषेध से छूट मिली हुई है। बेंथम जो दिखना चाहते हैं वह यह है कि वे विधियां, जो कोई बाध्यता या अनुशास्ति नहीं अभ्यारोपित करती हैं, पूर्ण विधि नहीं हैं अपितु विधियों के अंग हैं।

ऑस्टिन का मुख्य कार्य बेंथम को निश्चितता (definiteness) और यथार्थता (preetrien) देना था। इसलिये ऑस्टिन उपयोगितावाद और न्यायिक विधात्मकवाद के संयोजन को निरोपित करता है।

ऑस्टिन के विचार का तीन शीर्षों में विवेचन किया जा सकता है –

1. विधिशास्त्र का आधार (Basis of Jurisprudence)
2. विधिशास्त्र की प्रणाली (Method of Jurisprudence)
3. विधि और आचारशास्त्र (Law and ethics)

1. विधिशास्त्र का आधार : संप्रभु का समादेश –

विधि का आज्ञापक परिभाषा वृहत अर्थ में, जिसमें पद विधि का प्रयोग किया जा सकता है, यह एक समादेश को इंगित करता है जो किसी आचरण के लिए किसी व्यक्ति को बाध्य बनाते हैं। एक समादेश होते हुये, इसे अनिच्छा की धमकी के साथ नियत (determinate) व्यक्ति से, अवश्य निकलना चाहिए यदि नियम का पालन नहीं किया जाता है, किन्तु प्रत्येक समादेश विधि उत्पन्न नहीं करता है।

2. विधिशास्त्र की प्रणाली -

यह प्रणाली विधियों की उन जातियों में भेद करती है जो विधात्मक विधि के विधिवेत्ताओं को पसंद है। विधात्मक विधि संप्रभु द्वारा व्यवहित रूप से या तत्क्षण रूप से प्रतिपादित की जाती है। यह वह नियम है जो राजनीतिक रूप में वरिष्ठ द्वारा राजनीतिक रूप में अवर के लिए प्रतिपादित है। ऑस्टिन की सम्प्रभुता का सिद्धांत - यदि कोई नियत वरिष्ठ व्यक्ति, अन्य वरिष्ठ व्यक्तियों की अवज्ञा करने का आदी नहीं है, तो वह उस समाज के बड़े हिस्सों से आभ्यासिक अवज्ञा को प्राप्त करता है, वह नियत वरिष्ठ व्यक्ति उस समाज में संप्रभु होता है और समाज राजनीतिक और स्वतंत्र होता है।

ऑस्टिन ने माना कि विधिशास्त्र की मुख्य कुंजी (tool) विश्लेषण है।

3. विधि और आचारशास्त्र -

ऑस्टिन के अनुसार, "विधिशास्त्र का विज्ञान विधात्मक विधि, अथवा कड़ाई से ऐसी कही जाने वाली विधि जो अपनी अच्छाई तथा बुराई को ध्यान में लिए बिना समझी जाती है, से सरोकार रखता है।" विधि के सर्वोच्च उद्देश्य के रूप में प्रतिपादित विश्लेषण तार्किक समन्वयन के आदर्श है। विधि को कुछ निश्चित मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित सुसंगत प्रणाली के रूप में माना जाता था जिससे कुछ विशेष नियम निकाले जा सकते हैं। किन्तु कोई भी विधि जो विश्लेषक के फ्रेमवर्क में योग्य नहीं बैठ सकती, वह ऐतिहासिक घटना या तार्किक विषमता के रूप में डब हो जाती है जो शीघ्र लुप्त हो जाती है।

ऑस्टिन के अनुसार समादेश के प्रकार -

1. सामान्य - सामान्यतः किसी वर्ग (class) के सदस्य
2. कदाचनिक (occasional)/विशेष - एक विशिष्ट कार्य अथवा सहनशीलता (forbearance)

सभी विधियां समादेश नहीं होती हैं। वे विधियां जो समादेश नहीं होती हैं -

1. घोषणात्मक विधियां - वे विधियां जो विधमान विधियों का स्पष्टीकरण करती है।
2. निरसित करने के लिए विधियां - (अनुज्ञात्मक विधियां कहलाती हैं)
3. अपूर्ण विधियां - नैतिक बाध्यता (राज्य के नीति निर्देशक तत्व)
4. विधियां जो केवल अधिकार प्रदान करती हैं (कर्तव्य नहीं)
5. प्रथागत विधियां - लोगों से न कि सम्प्रभु से।

आलोचना -

ऑस्टिन के सिद्धांत के मुख्य बिन्दुयें निम्नलिखित हैं -

1. रूढ़ियों की उपेक्षा की गई - जैसा कि ऑस्टिन कहता है, 'विधि सम्प्रभु का समादेश है', यह बातऐतिहासिक तथ्यों द्वारा समर्थित नहीं है। प्रारंभ काल में वरिष्ठ का समादेश नहीं अपितु रूढ़ियां (customs) लोगों के आचरण को विनियमित करती थीं। राज्य के अस्तित्व में आ जाने के बाद रूढ़ियां आचरण का विनियमन करती रहीं। इसलिए रूढ़ियों को भी विधिशास्त्र के अध्ययन में सम्मिलित किया जाना चाहिये परन्तु ऑस्टिन ने उनकी उपेक्षा की।

ऑस्टिन के सिद्धान्त के समर्थक कहते हैं कि उनका सिद्धान्त ऐसी विधि को विचार में लेता है जैसी कि यह एक विकसित समाज में विद्यमान है। वे नियम जो राज्य के अस्तित्व के पहले विद्यमान थे विधि के ऐसे ऐतिहासिक स्रोत हो सकते हैं जिनसे विधि निकली थी, किन्तु जब राज्य अस्तित्व में आता हैतो वे केवल सम्प्रभु की अनुशास्ति (sanction) द्वारा ही जारी रहते हैं और उसके द्वारा उनको आज्ञापक (imperative) बल मिलता है और इस तरह से वे भी समादेश हैं।

2. **विशेषाधिकार प्रदान करने वाली विधि** - वह विधि जो विशुद्ध रूप से अनुज्ञात्मक (permissive) स्वरूप की होती है और केवल विशेषाधिकार (privilege) प्रदत्त करती है, जैसे विल्स ऐक्ट; जो वसीयती दस्तावेज (document) के लेखन की वह रीति कथित करती है (lays down) जिससे कि इसका विधिक प्रभाव हो सके, ऑस्टिन की विधि की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आती है।

ऑस्टिन के एक आधुनिक हिमायती, बकलैण्ड की इस दलील के आधार पर ऑस्टिन के सिद्धान्त का समर्थन करने का प्रयत्न किया है कि समग्र कानून (स्टेट्यूट) समादेश होता है न कि उसका कोई विशिष्ट उपबन्ध। किन्तु यथार्थतः, ऐसी विधियां ऑस्टिन के सिद्धान्त में ठीक-ठाक बैठ नहीं पाती और यह इसकी एक गंभीर त्रुटि है। उसी प्रकार प्रक्रिया विधि (procedural law) ऑस्टिन की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आती है।

3. **न्यायाधीश द्वारा निर्मित विधि** - ऑस्टिन के सिद्धान्त में न्यायाधीश निर्मित विधि (judge-made law) के लिए कोई स्थान नहीं है। अपने कार्य के दौरान पूर्व निर्णयों (precedents) को लागू करने और विधि का निर्वचन (interpretation) करने में न्यायाधीश विधि बनाते हैं। यद्यपि कोई ऑस्टिनवादी यह कहेगा कि न्यायाधीश संप्रभु द्वारा सौंपी गई (delegated) शक्तियों के अधीन कार्य करती हैं, इसलिये उनके द्वारा निर्मित विधि संप्रभु के समादेश हैं किन्तु आधुनिक काल में कोई भी इस बात को अस्वीकार नहीं करेगा कि न्यायाधीश एक सृजनात्मक (creative) कार्य करते हैं और ऑस्टिन की विधि की परिभाषा इसे सम्मिलित नहीं करती।

4. **कन्वेन्शन** - संविधान के कन्वेन्शन जो अनिवार्य रूप से लागू (operate) होते हैं, यद्यपि वे न्यायालय द्वारा लागू करने योग्य (enforceable) नहीं होते हैं, ऑस्टिन की परिभाषा के अनुसार विधि नहीं कहलायेंगे, यद्यपि वे विधि हैं और विधिशास्त्र में अध्ययन की विषयवस्तु हैं।

5. **प्राइवेट व्यक्तियों द्वारा बनाए गये नियम** - ऑस्टिन का दृष्टिकोण कि 'विधात्मक विधि' में विधिक अधिकारों के अनुसरण में प्राइवेट व्यक्तियों द्वारा, बनाये गये नियम सम्मिलित हैं, विधि का एक अनुचित विस्तार है क्योंकि उनकी प्रकृति बड़ी अस्पष्ट और अनिश्चित होती है।

6. **अंतर्राष्ट्रीय विधि** - ऑस्टिन ने अंतर्राष्ट्रीय विधि को सम्मान संबंधी विधि और फैशन संबंधी विधि के साथ विधात्मक नैतिकता (positive morality) के अंतर्गत रखा। तथाकथित राष्ट्रों की विधि सामान्य रूप से राष्ट्रों के बीच प्रचलित रायों और भावों से बनी है। इसलिए यह उचित रूप से कही गई विधि नहीं है। विधि का मुख्य तत्व जिसका अन्तर्राष्ट्रीय विधि में अभाव है, अनुशास्ति (sanction) है, परन्तु केवल यही इसे विधि कहे जाने से वंचित नहीं करेगा। जब कोई भी यह स्वीकार नहीं करेगा कि अंतर्राष्ट्रीय विधि विधि नहीं है। इसलिये ऑस्टिन की परिभाषा के अनुसार विधि की एक महत्वपूर्ण शाखा विधिशास्त्र के अध्ययन से बाहर (excluded) हो जायेगी।

7. **समादेश सिद्धांत अमान्य है** - एक आधुनिक सिद्धान्तकार स्वीडन के प्रो. ओलीवर क्रोना, समादेश की धारणा के विधि पर लागू होने को अस्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि समादेश (command) और इच्छा (will) की घोषणा एक ही बात नहीं है। समादेश और इच्छा के कथन की घोषणा के बीच अन्तर है। समादेश सर्वदा एक कृत्य होता है जिसके द्वारा एक व्यक्ति किसी दूसरे की इच्छा को प्रभावित करना चाहता है। दूसरे, वर्तमान शासन-प्रणालियों में (विधि के लिये) समादेश की कल्पना पूर्ण रूप से अमान्य है। समादेश किसी निश्चित व्यक्ति की, जो समादेश देता है और एक दूसरे व्यक्ति की जिसको समादेश दिया जाता है, पूर्व-कल्पना करता है। आधुनिक काल में, राज्य का तन्त्र (machinery) सदा

बदलता रहता है, और इसको लोगों के एक समूह द्वारा चलाया जाता है। इसलिए समावेश की कल्पना ऐसी प्रणालियों में लागू नहीं होती।

8. यह कृत्रिम है - यह विचार कि विधि सम्प्रभु का समादेश है, इससे लगता है कि जैसे संप्रभु (sovereign) समाज के ऊपर उससे पृथक् रूप से स्थित है और अपने मनमाने समादेश देता है। यह विचार विधि को कृत्रिम तजपपिबपंसद्ध बनाता है, और विधि के स्वभावतः विकासशील स्वरूप को ध्यान में नहीं रखता है। संप्रभु समाज या राज्य का एक अभिन्न अंग है और उसके समादेश संगठित समाज के समादेश है। आधुनिक काल में राज्य के बारे में अधिकांश सिद्धान्त कहते हैं कि संप्रभुता अब उस रूप में विद्यमान नहीं है जिस रूप में उसकी पीछे के लेखकों ने कल्पना की थी। वे कहते हैं कि राज्य स्वयं संप्रभु है और विधि जनता की सामान्य इच्छा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिये विधि को समादेश नहीं कहा जा सकता।

9. **विधि के पालन के लिए अनुशास्ति एकमात्र साधन नहीं है** - ऑस्टिन के विचार के अनुसार, यह मात्र अनुशास्ति ही है जो मनुष्य को विधि के पालन के लिए प्रेरित करती है। प्रस्तुत लेखक के मतानुसार यह सही विचार नहीं है। लार्ड ब्राइस ने निश्चेष्टता (indolence), समादर (deference), सहानुभूति, भय और तर्क को संक्षेप में उन हेतुओं (motives) के रूप में कहे गए हैं, जो किसी मनुष्य को विधि का पालन करने के लिए प्रेरित करते हैं। राज्य की शक्ति वह अन्तिम वस्तु है, वह बल है जो विधि का पालन कराने का अन्तिम साधन है।

10. **विधि और नैतिक आधार से संबंध पर ध्यान नहीं दिया गया** - ऑस्टिन के अनुसार, "विधिशास्त्र का विज्ञान विधयात्मक विधि, अथवा कड़ाई से ऐसी कही जाने वाली विधि जो अपनी अच्छाई तथा बुराई को ध्यान में लिए बिना समझी जाती है, से सरोकार रखता है।" दूसरे शब्दों में, विधि का नैतिकता से कोई संबंध नहीं है। किन्तु यह सही बात नहीं है। विधि स्वेच्छापूर्ण (arbitrary) समादेश नहीं है जैसी कि ऑस्टिन द्वारा कल्पना की गई है, अपितुयह एक शरीर जैसी (organic) प्रकृति का विकास है। डॉ. जे. ब्राउन ठीक कहते हैं कि सर्वाधिक निरंकुश विधायक भी अपनी जाति (race) और काल को जाने बिना न तो कोई बात सोच सकता है, न कोई कार्य करता है। इसके अतिरिक्त विधि का विकास अंधी शक्तियों (blind forces) के अनुसार नहीं हुआ है अपितु यह सोच-समझ के साथ विकसित की गयी है और यह एक निश्चित लक्ष्य की ओर निर्दिष्ट की गई है। इस प्रकार यह सदाचार संबंधी और नैतिक तत्वों से पूर्णतः रहित नहीं है। लैटिन में, और उनके अन्य यूरोपीय भाषाओं में विधि के लिए प्रयुक्त शब्द इस विचार का समर्थन करते हैं। 'ठीक' (right) 'दोष' (wrong) और 'कर्तव्य' (duty) आदि शब्दों की उत्पत्ति कतिपय सदाचार संबंधी भावनाओं से हुई है। ऑस्टिन ने विधि के इस पहलू पर ध्यान नहीं दिया है।

विश्लेषणात्मक विचारधारा और ऐतिहासिक विचारधारा (Difference between Analytical and Historical School):

विश्लेषणात्मक विचारधारा	ऐतिहासिक विचारधारा
1. विधि संप्रभु का समादेश है। दूसरे शब्दों में विधि शासक द्वारा बनाई जाती है।	1. विधि अचेतन और काया जैसी विकास की वस्तु है। इसलिए विधि पाई जाती है बनाई नहीं जाती है।
2. विधि राज्य से उत्पन्न होती है और उसके बाद की है।	2. विधि राज्य से पहले की है और उससे उत्पन्न नहीं होती है।
3. विधान (legislation) विधि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत है।	3. रूढ़ि विधि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत है।

4. रूढ़ि का विधि में कोई स्थान नहीं है।	4. रूढ़ि विधान की पूर्ववर्ती है और उससे श्रेष्ठ है।
5. विधि वही होती है जैसा शासक चाहता है।	5. विधि को सर्वदा जन चेतना के अनुरूप होना चाहिए।
6. यह विधान (legislation) को विधिक सुधार का एकमात्र स्रोत मानता है।	6. यह रचनात्मक कार्यकलाप और विधिक सुधार को निरुत्साहित करती है।

विधि का विशुद्ध सिद्धांत (कैल्सन/विधात्मक विचारधारा) –

- इसे विधिक चिन्तन की वियना-विचारधारा (Vienna School) भी कहा जाता है।
- इस सिद्धांत का पहले पहल कथन 1911 ई. में हुआ।
- एक मान (norm) की अव्यवस्था meter विधिक कार्यों पर निर्भर नहीं है।
- "प्राकृतिक विधि" और वर्तमान 'समाजशास्त्र' विधिशास्त्र के विरुद्ध प्रतिक्रिया।
- विधि का सर्मिथ संहिताकरण।
- ऑस्टिन के करीब, यथार्थवादियों और ड्यूगिट भी।
- सिद्धांत का उद्देश्य – यह है कि यह विधि को तत्वमीमांसीय कुहरा से, जिसके द्वारा ह सदैव न्याय संबंधी विचार द्वारा या प्राकृतिक विधि के सिद्धांत द्वारा ढंका रहता है। मुक्त करने को अग्रसर होता है।
- उसने है (Sein) और होना चाहिये (Solien) के बीच अन्तर खींचा है।
- "यदि कोई विधि का उल्लंघन करता है, उसे सजा मिलनी चाहिये।"
- ऑस्टिन के 'समादेश सिद्धांत' को अस्वीकार करता है क्योंकि यह मानसिक तत्व को सम्मिलित करता है।
- विधि 'मानों के सोपान तंत्र' है और सर्वोच्च मान अर्थात् प्रधान-मान (grundnorm) किसी विधिक प्रणाली का आरंभिक बिन्दु है।
- 'प्रधान-मान' का क्रमिक ठोस बनते जाना (gradual concretization) है।
- वह ऑस्टिन की विधि को 'स्थिर' (static) कहता है।
- प्रधान-मान से संबंधित प्रश्न विधि पूर्व (pre-legal) प्रश्न होते हैं।
- विधि के सिद्धांत का लक्ष्य, विधि के शोधन (purification of law) प्रक्रिया के द्वारा एकता के लिए अव्यवस्था विप्लव (chaos) और बाहुल्य को घटाना है। (Aim of a theory of law is to reduce chaos and multiplicity unity by a process of purification of law)
- "विधिक-मान समादेश गठित नहीं करता है, बल्कि यह शर्त और अनुक्रम का संबंध है।"
- विधि और राज्य एक ही होते हैं।
- कोई सम्प्रभु नहीं।
- प्राइवेट विधि लोक विधि की तरह है।
- प्रकृति और विधिक व्यक्तियों के बीच कोई अन्तर नहीं है।
- केवल विधिक कर्तव्य और न कि अधिकार।
- अंतर्राष्ट्रीय विधि एक सर्वोच्च विधि है।
- अनुशास्तियां युद्ध और हरजाना (reprisals) हैं।
- 'प्रधान मान' – 'समझौतों का सम्मान किया जाना चाहिए।' (pacta sunt servanda)
- कैल्सन के अनुगामी – लौटरपाट (Laucterpacht)
- स्टोन (Stone) और फ्रीडमैन (Friedman) ने केल्सन के सिद्धांत का जोरदार रूप से समर्थन किया है।

कैल्सन के सिद्धांत के मूल-तत्व –

केल्सन ने विधि के विशुद्ध सिद्धान्त को निम्नलिखित मूलभूत तत्वों पर आधारित किया है -

1. विधि के सिद्धान्त के अन्तर्गत वास्तविक विधि, अर्थात् "विधि जैसी कि वह है" का वर्णन होना चाहिये न कि आदर्शात्मक विधि अर्थात् "जैसी कि वह होनी चाहिये" का। इस दृष्टि से केल्सन के विचार ऑस्टिन से मिलते-जुलते हैं इसीलिए उनकी गणना प्राजिटिव विचारधारा के समर्थकों में की गयी है न कि प्रकृतिवादी (naturalists) विचारधारा के पोषकों में।
2. केल्सन के अनुसार "विधि के सिद्धांत" और "विधि" में अन्तर है। यद्यपि विश्व की प्राकृतिक वस्तुओं में कोई भी तार्किकता नहीं है परन्तु ऐसा वैज्ञानिक सिद्धान्त जो इन वस्तुओं का वर्णन करता है, तार्किक होता है। ठीक इसी प्रकार यद्यपि विधि के अन्तर्गत विभिन्न परस्पर विरोधी नियमों का वर्णन रहता है फिर भी विधि के सिद्धान्त का कार्य यह होता है कि वह उन सभी विरोधाभासी नियमों में तार्किक दृष्टि से ताल-मेल बैठाये और संयमित रूप से उनका एकीकरण करे। केल्सन ने अपना शुद्ध विधि-सिद्धान्त केवल क्षणिक स्फूर्ति के प्रभाव में आकर नहीं किया, बल्कि उन्होंने विधि के तथ्यों (facts of the law) के वास्तविक स्वरूप के सूक्ष्म अध्ययन के पश्चात् अपना विशुद्ध विधि-सिद्धान्त प्रतिपादित किया। केल्सन ने स्पष्ट किया कि वे विधि के विशुद्ध सिद्धान्त का निरूपण इस प्रकार कर रहे हैं ताकि विधि के माध्यम से समस्त विषय-वस्तुओं को प्रस्तुत किया जा सके।
3. विधि का सिद्धान्त ऐसा होना चाहिये जो सभी समय तथा स्थानों में समान रूप से लागू किया जा सके। दूसरे शब्दों में, विधि के सिद्धान्त को समय और स्थान की परिसीमाओं से मुक्त रखा जाना चाहिये। इस दृष्टि से केल्सन को सामान्य विधिशास्त्र का समर्थक माना जा सकता है।
4. विधि का सिद्धान्त 'विशुद्ध' (pure) होना चाहिये; अर्थात् उसे नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, इतिहास आदि से अप्रभावित रखा जाना चाहिये। केल्सन के विचार से किसी भी सिद्धान्त की शुद्धता के लिए यह परम आवश्यक है कि वह उपर्युक्त प्रभावों से मुक्त रहे। परन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं है कि केल्सन ने नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र या इतिहास को व्यर्थ तथा महत्वहीन माना। उनका कहना तो केवल यह था कि विधि के सिद्धान्त को इन विषयों के प्रभाव से मुक्त रखा जाना चाहिये।
5. केल्सन ने विधिशास्त्र को एक सिद्धान्तमूलक विज्ञान माना है न कि प्राकृतिक विज्ञान। प्राकृतिक विज्ञानों से सम्बन्धित विधियां कारण और परिणामों के तालमेल का कथन मात्र होती है। उदाहरणार्थ, यदि हाइड्रोजन और आक्सीजन को दो और एक के अनुपात में मिला दिया जाये तो पानी बन जायेगा। इस नियम का उल्लंघन हो ही नहीं सकता और यदि उल्लंघन होता है, तो यह नियम व्यर्थ हो जायेगा। परन्तु विधिशास्त्र में विधियों का संबंध कार्य-कारण पर आधारित नहीं होता बल्कि सिद्धान्त मूलक (normative) होता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति हत्या करता है, तो उसे फांसी का दंड दिया जाना चाहिये। ऐसी विधियां उस स्थिति में भी विधिमान्य रहती हैं जब कि उनका उल्लंघन कर दिया जाता है और जो परिणाम निर्दिष्ट हैं, वे नहीं निकलते।

मूल-मान (Grundnorm):

केल्सन के अनुसार, Laws are ought propositions अर्थात् मान (norms)। यदि X होता है तो Y को होना चाहिए, अथवा दूसरे शब्दों में, यदि कोई व्यक्ति चोरी करता है, तो उसे दंडित होना चाहिए। विधि वास्तव में क्यो घटित होता है, (इज) को वर्णन करने का प्रयत्न नहीं करती है केवल कुछ निश्चित नियमों को निर्धारित करती है।

प्रत्येक मान (norm) इच्छा (will) के कार्य की अभिव्यक्ति है कि कुछ होना चाहिए। मान का एक विधिक अर्थ है जो इच्छा के कार्य से जुड़ा हुआ होता है। यह निर्णय कि मानव आचरण का कार्य विधिक है या अविधिक है, यह विशिष्ट नामतः मानात्मक निर्वचन (normative interpretation) का परिणाम है।

मान (norm) किसी कार्य का अर्थ है जिसके द्वारा एक निश्चित आचरण समादेशित, अनुज्ञात या प्राधिकृत होता है। एक आपराधिक संहिता में ऐसे वाक्य सम्मिलित हो सकते हैं - चोरी का दंड कारावास द्वारा होता है। इस वाक्य का अर्थ वास्तविक घटना के विषय में कथन नहीं है; इसके बजाय अर्थ (मान) है; यह कारावास द्वारा चोरी को दंडित करने का आदेश या प्राधिकृति है। इसी तरह, विधायी कार्य मान (norm) को निर्मित करते हैं या posit करते हैं, होना चाहिए (ought) इच्छा के प्रत्येक का व्यक्तिनिष्ठ अर्थ है किन्तु प्रत्येक कार्य का वस्तुपरक रूप से यह अर्थ भी नहीं है।

किसी डाकू का यह समादेश कि उसे एक निश्चित राशि का अन्तरण किया जाये का वही व्यक्तिगत अर्थ है जो कि किसी आय कर कर्मचारी का समादेश है अर्थात् उस व्यक्ति को जिसे समादेश निर्देशित किया गया है, कुछ भुगतान करना चाहिए। किन्तु कर्मचारी का केवल समादेश वैध मान (वस्तुनिष्ठ अर्थ) अर्थ है, जो कि सम्बोधित (addressed) व्यक्ति पर बाध्यकारी है क्योंकि कर्मचारी का कार्य कर विधि द्वारा प्राधिकृत है।

इसलिये, किसी मान का वस्तुनिष्ठ विधि, जो कि किसी कार्य या इच्छा का व्यक्तिनिष्ठ अर्थ है कि व्यक्ति को एक निश्चित ढंग से व्यवहार करना चाहिये, तथ्यात्मक तथ्य (factual fact) अर्थात् (इस) हैं, से नहीं निकलती है, बल्कि मान से, जो इस कार्य को प्राधिकृत करता है, अर्थात् 'होना चाहिये' से। हम एक व्यक्ति (जल्लाद) द्वारा एक व्यक्ति को, मृत्यु दंड के कार्यान्वयन के लिए न कि एक हत्यारे के रूप में, वध करने का निर्वचन करते हैं, क्योंकि हमारा निर्वचन इस मान्यता पर आधारित है कि मानने का कार्य न्यायालय के विर्णय के निष्पादन को गठित करता है, जिसमें दंड के रूप में वध करने का समादेश दिया है। हम न्यायालय के कार्य को व्यक्तिगत मान के वस्तुनिष्ठ अर्थ के रूप में उपारोपण करते हैं और इस तरह से व्यक्तियों का निर्वचन करते हैं जो न्यायालय के रूप में, कार्य करते हैं। हम ऐसा करते हैं क्योंकि हम विधि (statute) के निष्पादन के रूप में न्यायालय के कार्य को मान्यता देते हैं और हम संविधान के निष्पाइन के रूप में विधायन के कार्य का सम्मान करते हैं अर्थात् वह सामान्य मान जो इन व्यक्तियों को बल प्रयोग के कार्य निर्धारित करने वाले सामान्य मान को स्थापित करने के लिए प्राधिकृत करते हैं।

अब उस कार्य, जिसका अर्थ संविधान है, न केवल व्यक्तिनिष्ठ अर्थ है बल्कि उसका वस्तुनिष्ठ अर्थ भी है अर्थात् जिसका बाध्यकारी स्वरूप है, यदि - यह किसी कारणवश ऐतिहासिक रूप से प्रथम संविधान है - हम अपने विधिक विचार में पूर्व कल्पना करते हैं कि हमें वैसा व्यवहार करना चाहिए जैसा संविधान निर्धारित करता है। ऐसी पूर्वकल्पना, जो विधिक आदेश के मान की वस्तुनिष्ठ विधिमान्यता को स्थापित करती है, मूल-मान (grundnorm) कहलायेगी। यह विध्यात्मक विधिक कार्य द्वारा स्थापित नहीं होता है बल्कि यह पूर्वकल्पित है और यह पूर्वकल्पना सिद्धांत के अनुसार, विधिक आदेश (legal order) की विधिमान्यता के लिए अन्तिम तर्क (reason) है, कि संविधान का पालन किया जाना चाहिए। (यह स्मरण करना बहुत महत्वपूर्ण है कि 'प्रधान मान' संविधान नहीं है, यह सामान्यतः पूर्व कल्पना है)। केल्सन ने प्रमाणित किया कि प्रत्येक विधिक आदेश में 'प्रधान मान' ही हो, आवश्यक नहीं है परन्तु 'प्रधान मान' के कुछ प्रकार अवश्यक होंगे, उदाहरण के लिए, लिखित संविधान या किसी तानाशाह की इच्छा। मुख्य बिंदु यह है कि जो किसी प्रभावी नियंत्रण में हैं उनकी अवज्ञा का पालन होना चाहिए।

अनन्तः यह स्मरणीय है कि मान किसी इच्छा के वास्तविक कार्य का केवल अर्थ नहीं हो सकता है; यह सोचने के कार्य (act of thinking) की विषय-वस्तु (content) भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, 'प्रधान मान' एक काल्पनिक इच्छा है जिसका अर्थ मान है जो केवल हमारे विचार में पूर्वकल्पित है। प्रधान मान न विध्यात्मक मान है नहीं ही विधि का नियम बल्कि यह अतिरिक्त विधिक (extra legal) या गैर विधिक (non-legal) मान है क्योंकि यह किसी उच्चतम मान से उद्भूत नहीं होता है। आगे, यह स्वतः विधिमान्य या अविधिमान्य नहीं है, यह धारणा है या विधिगत मान्यतायें (इसके तुलना में, संविधान एक विध्यात्मक या विधिक मान है; एक वास्तविक या विधिमान्य

मान) यह केवल अधिकार देता है और कोई अनुशास्ति अभ्यारोपित नहीं करता है। यह शेष विधिक प्रणाली को विधिमान्य बनाता है और इसलिये कोई इसे विधिमान्य बनाने के लिए इस प्रणाली का प्रयोग नहीं कर सकता है।

इस प्रकार, केल्सन के विधिक आदेश का तस्वीर सिर्फ 'होना चाहिये' के समूह के रूप में नहीं निकलता है बल्कि मानों के सोपान तंत्र से, जो प्रधान मान से शुरू होता है। कोई मान केवल इसलिए विधिमान्य है क्योंकि यह या तो किसी दूसरे (वरिष्ठ) मान से लिया गया है या आदेशित है। यह मानों के सोपान तंत्र का पूर्वकल्पना करता है, प्रत्येक मान कुछ अन्य मान की पूर्वकल्पित विधिमान्यता पर विधिमान्य होता है। प्रत्येक स्तर पर, इस सोपान तंत्र में, मानों को उत्पन्न किया जा सकता है या इन्हें ठोस बनाया जा सकता है। इस क्रम में अन्तिम स्थान 'प्रधान मान' के है जिसकी विधिमान्यता विशुद्धतन परिकल्पित है और जो विधिक आदेश के प्रत्येक अन्य नियम को विधिमान्यता प्रदान करता है। मान निर्धारित करने वाले अंग के संपूर्ण सोपान तंत्र और मानों का ठोस रूप लेने की प्रक्रिया को केल्सन किसी विशेष राज्य के विधिक तंत्र (legal order) की संज्ञा देते हैं। केलसन के अनुसार, विधिक मानों को अन्तर्विरोधी प्राधिकारों से उद्भूत नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, निर्णय अपना प्राधिकार परिषद में तंत्र से प्राप्त करता है, तंत्र संसद के अधिनियम से प्राप्त होता है। संसद का अधिनियम संविधान से प्राप्त किया जाता है।

ऑस्टिन बनाम केल्सन –

ऑस्टिन के लिए, विधि एक समादेश है जो कि अनुशास्तियों द्वारा समर्थित होता है। केल्सन दो बिंदुओं पर असहमत हैं –

1. ऑस्टिन के अर्थ में, अनुशास्ति का नैतिक या मानसिक आधार होता है; भय द्वारा प्रेरणा लोगों को विधि के समक्ष सुपुर्द कराती है। केल्सन ने समादेश के विचार को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि यह विधि के सिद्धांत में मानसिक तत्व को सम्मिलित करता है जो उनके दृष्टिकोण में विशुद्ध (pure) है। केल्सन के अर्थ में, बल प्रयोग के कार्य का अभिप्राय बलपूर्वक स्वतंत्रता से वंचित करना है। इसमें भय का विचार अन्तर्ग्रस्त नहीं रहता है, क्योंकि मान विधि मान समादेश गठित नहीं करता है बल्कि यह शर्त और क्रम में संबंध गठित करता है।
2. ऑस्टिन के अर्थ में, अनुशास्ति विधि से अलग की चीज है जो इसे विधिमान्यता प्रदान करती है। जबकि केल्सन के अनुसार, अनुशास्ति प्रत्येक विधि मान में (in-built) रहती है। केल्सन के अनुसार, अनुशास्ति का प्रवर्तन स्वयं विधि के अन्य नियमों के प्रवर्तन पर निर्भर करता है; और आगे, किसी नियम की विधिमान्यता को इसके अनुशास्तियों से कोई सरोकार नहीं होता है।

इस प्रकार, ऑस्टिन ने कहा होगा कि इस प्रतिपादन (proposition) के पीछे की अनुशास्ति, कि तुम्हें चोरी नहीं करनी चाहिए, यह है कि यदि तुम चोरी करते हो, तो तुम दंडित होगे। केल्सन के अनुसार, एक विधि यह निर्धारित करती है कि यदि किसी व्यक्ति ने चोरी की है तो उसका विचारण किया जाना चाहिए; एक अन्य नियम यह निर्धारित करता है कि यदि कोई जूरी 'दोषी' होने अधिमत देती है तो न्यायाधीश को दंड का आदेश होना चाहिए; इत्यादि। इस तरह से, ऑस्टिन के अर्थ में विधि और शास्ति के बीच संविदा लुप्त हो जाती है।

दार्शनिक विचारधारा (Philosophical School – Kant, Schelling, Hegal, Kohler, Spengler):

- जर्मनी में History School की शाखा।
- फ्रीडमैन इसे 'Philosophical Historism' की संज्ञा देते हैं।
- यह संपूर्ण विश्व के विकास के इतिहास के विश्वव्यापी सिद्धांत की खोज करता है। (जबकि ऐतिहासिक सिद्धांत केवल एक विशेष जाति (race) तक सीमित है और इसकी विधियां कुछ विश्वव्यापी और आत्मविषयक (metaphysical) से ली गई है।)

- यह विचारधारा मुख्यंतः कुछ आदर्श के संबंध में विधि के संबंध से सरोकार रखती है। इस विचारधारा का उद्देश्य विधि के उद्देश्य को प्राप्त करना है। दार्शनिक विधिशास्त्री विधि को न तो समादेश ही मानते हैं और न ही कोई ऐसा चीज जो ऐतिहासिक आवश्यकता से निकलती हो, बल्कि उसे तर्क का परिणाम मानते हैं।

आचारशास्त्र और विधिशास्त्र के बीच संबंध –

इस विचारधारा और आचारशास्त्र के विज्ञान के लक्ष्य और उद्देश्य मुख्यतः एक समान है अर्थात् मानव व्यक्तित्व की पूर्णता।

आचारशास्त्र बाध्यता पर भरोसा करता है –

आचारशास्त्र मानव आचरण के विज्ञान के रूप में, आदर्श मानव व्यवहार तथा जीवन के उच्चतम और श्रेष्ठ गुणों पर आधारित मानव के आन्तरिक जीवन के महत्व से संबंधित नियमों को प्रतिपादित करता है। दूसरी ओर, विधि से अभिप्राय मानव के बाह्य आचरण को विनियमित करना है। कांट के अनुसार, उनकी पुस्तक 'Philosophy of Law' मानव के आन्तरिक जीवन की मुक्ति पर प्रकाश डालती है और विधि का एक सर्वव्यापक सिद्धांत देना संभव है।

विधि और आचारशास्त्र का सामान्य आधार – सालमण्ड

दार्शनिक विधिशास्त्र आचारशास्त्र और विधिशास्त्र के नैतिक और विधिक दर्शन का सामान्य आधार है। दार्शनिक विचारधारा विधि के उद्देश्य तथा विधिक नियमों द्वारा मानव आचरण के बलप्रयोगी विनियम की आवश्यकता पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है। विधि एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्तिगत आवश्यकता स्वच्छन्द रूप से उस समाज के अधीन होती है। विधि, व्यक्तिगत कल्याण के अनुसरण में, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के क्षेत्र का निर्धारण करके इस सामंजस्य को प्राप्त करती है ताकि उस स्वतंत्रता को उन सीमाओं के अन्तर्गत रखी जा सके जो मानव जाति के सामान्य कल्याण के अनुरूप हैं।

विधिशास्त्र का तत्क्षण उद्देश्य व्यक्ति के लिए स्वतंत्रता प्राप्त करनी है और इसका अन्तिम उद्देश्य आचारशास्त्र अर्थात् मानव पूर्णता के सदृश्य है।

राज्य और विधि दोनों मानव-तर्क के विकास की उपज है –

हीगल को इस आन्दोलन का सर्वाधिक प्रभावशाली और मुख्य विचारक कहा जा सकता है। उसके अनुसार, राज्य और विधि दोनों तर्क के विकास की उपज है जिसके द्वारा व्यक्ति की नैतिकता मुक्त व्यक्तिनिष्ठ (subjective) इच्छा सहज भावनाओं के शुद्धीकरण के द्वारा अपने अकेले अस्तित्व से ऊपर उठ जाती है और नैतिक समष्टि (वस्तुनिष्ठ इच्छा) में मिल जाती है और उसके साथ एकमेल हो जाती है तथा यथार्थ स्वतंत्रता को प्राप्त करती है और युक्ति में अपने वास्तविक स्वरूप को पाती है। संक्षेप में, विकास का उसका दर्शन तर्कपूर्ण आत्म-साक्षात्कार और मनुष्य की स्वतंत्रता का है।

विधि का नैतिक आधार –

यह चिन्तन विधि के वर्तमान या अतीत की अपेक्षा उसके आदर्श भविष्य से अधिक संबंध रखता है। इसमें नियमों की अनुशासित की अपेक्षा उनके नीतिशास्त्रीय (ethical) और नैतिक (moral) आधार को अधिक विचार में लिया गया है। विधि और नैतिक आधार को एक में मिला दिया गया है।

दार्शनिक विचारधारा का महत्व –

यद्यपि हीगल ने अपनी आधार-भूमि से अनेक विधि-संकल्पनाओं पर प्रकाश डाला है और दंड का सिद्धांत आदि प्रस्तुत किया है, किन्तु यह तत्वतः एक दार्शनिक है और विधि-दर्शन का उसका

विवेचन प्रासंगिक (casual) है, उसके सिद्धांत की सर्वांगपूर्णता के लिये है। इस आन्दोलन के अन्य विचारकों के विचारों में ऐसी विभिन्नता है कि वे एक वर्ग में नहीं आते जिससे उनको इकट्ठे रूप में एक विचारधारा (school) कहा जा सके। तथापि उनकी कृतियां, अनेक कारणों से, महत्वपूर्ण हैं। प्रथमतः, हम उनमें प्राकृतिक विधि की पुनः स्थापना पाते हैं और इस संबंध में वे प्राचीन और नवीन चिंतन के बीच एक कड़ी के रूप में है। दूसरे, दार्शनिक विचारधारा और ऐतिहासिक विचारधारा की परस्पर एक दूसरे पर क्रिया और प्रतिक्रिया हुई और नये सिद्धांत सामने आये। तीसरे, इतिहास के दर्शन के बारे में हीगल के विचार से विधि के तुलनात्मक और ऐतिहासिक दर्शन के और आगे अध्ययन की प्रेरणा मिली और विधि के विकास के अनेक नवीन सिद्धांतों को रखा।

समाजशास्त्रीय विचारधारा (The Sociological School):

समाजशास्त्रीय विचारधारा का आधारभूत तत्व यह है कि किसी चीज को हम तब तक नहीं समझ सकते हैं कि यह क्या है जब तक हम यह अध्ययन नहीं करते कि यह क्या करता है। उदाहरण के लिए, 'क्रियाशील विधि' (law in motion) विधि एक ऐसी प्रक्रिया है जो अन्तर्विरोधी हितों को संतुलित करती है।

- विधि सामाजिक विकास के संत्र के रूप में है।
- साम्यवाद तथा जैविक विकास के विचारों से फ्रांस और जर्मनी के लेखकों द्वारा प्रवर्तित किया गया।
- 20वीं शताब्दी में समाजीकरण की प्रवृत्ति।
- विध्यात्मकवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया क्योंकि विध्यात्मकवादियों ने सामाजिक प्रक्रियाओं को विचार में लाने से इंकार कर दिया।
- विधि कोई पृथक तथ्य नहीं है परन्तु सामाजिक स्वरूप (phenomenon) का एक भाग है।
- समाजशास्त्रीय विधिशास्त्र के पिता रास्को पाउन्ड को कहते हैं।

रास्को पाउंड (यू. एस. ए.) Roscoe Pound (U.S.A.):

पाउंड के अनुसार, समाजशास्त्रीय विधिशास्त्र को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि विधियों के निर्माण, निर्वचन और प्रयोग सामाजिक तथ्यों को ध्यान में रखें। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए निम्न अपेक्षित हैं -

1. विधिक प्रशासन के सामाजिक तथ्यों का तथ्यात्मक अध्ययन।
2. विधायन के लिए प्रारंभिक तैयारी के रूप में सामाजिक अन्वेषण।
3. विधि को अत्यधिक प्रभावी बनाने के लिए साधनों का सतत अध्ययन।
4. विधिशास्त्र के मानसिक और दार्शनिक दोनों विधियों का अध्ययन।
5. विधि इतिहास का समाजशास्त्रीय अध्ययन।
6. उचित और युक्तियुक्त समाधान की संभावना के लिए allowances
7. अंग्रेजी बोलने वाले देशों में न्याय का प्रशासन।
8. विभिन्न विधियों की उद्देश्य की उपलब्धि।

- सामान्य विधि अभी भी व्यक्तिगत अधिकारों का ख्याल रखती है। इसलिए विधिक आदेश के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए होने चाहिए -
  1. कुछ निश्चित हितों की मान्यता। व्यक्तिगत, लोक और सामाजिक हित।
  2. सीमाओं की परिभाषा जिसके अन्तर्गत ऐसे हित विधिक रूप से मान्य हो जायेंगे और प्रभावी होंगे।
  3. परिभाषित सीमाओं के अन्तर्गत उन हितों को प्राप्त करना।
- विधि सामाजिक नियंत्रण का माध्यम है, उदाहरण के लिए, यदि कोई फैक्टरी प्रदूषण फेलाता है तो न्यायालय को इसमें सन्निहित विभिन्न सामाजिक हितों को देखना चाहिये।
- सामाजिक इन्जीनियरिंग की प्रणाली -

- विधिवेत्ता को सामाजिक अन्वेषण की सूची अवश्य तैयार करनी चाहिए।
- विधिक सिद्धांत और वास्तविक प्रभाव।

पाउंड के अनुसार, विधिशास्त्र सामाजिक इन्जीयरिंग का विज्ञान है। यह समाज में प्रतिस्पर्धा रखने वाले हितों के बीच संतुलन लाता है। शब्द 'सामाजिक इन्जीयरिंग' का मूल्यांकन करने के लिए उसने विभिन्न हितों को वर्गीकृत किया, जो विधि द्वारा संरक्षित किये जाने को है।

प्राइवेट, लोक और सामाजिक हित - विधि द्वारा संरक्षित किये जाने वाले प्राइवेट हित हैं - (क) व्यक्ति का व्यक्तित्व का हित इसमें उनकी शारीरिक क्षति, ख्याति, स्वेच्छा (volition) की स्वतंत्रता और निष्ठा (conscience) की स्वतंत्रता सम्मिलित है। वे दाण्डिक विधि, अपकृत्य विधि और विश्वास (conviction) और राय के मामलों में हस्तक्षेप करने की सरकार की शक्ति पर सीमाओं के द्वारा सुरक्षित किये जाते हैं, (ख) घरेलू संबंधों में व्यक्ति का हित; इसमें विवाह, पति और पत्नी और पिता और सन्तानों के सम्बन्ध और भरण-पोषण के दावे सम्मिलित हैं, (ग) वस्तु की बाबत हित; इसमें सम्पदा सम्बन्धी अधिकार, विरासत और विल द्वारा उत्तराधिकार और पेशे सम्बन्धी स्वतंत्रता सम्मिलित हैं।

लोकहित - मुख्य लोकहित हैं; (क) राज्य के संरक्षण में हित और (ख) सामाजिक हितों के रक्षक (guard) के रूप में राज्य के हित।

सामाजिक हित - सामाजिक हित जो विधिक संरक्षा के योग्य हैं, वे हैं -

(क) शान्ति और व्यवस्था के संरक्षण और सामान्य सुरक्षा के रख-रखाव में हित, (ख) विवाह और धार्मिक संस्थाओं जैसी सामाजिक संस्थाओं के संरक्षण में हित, (ग) भ्रष्टाचार का प्रतिरोध करने, जुआ खेलने को प्रोत्साहित करने और प्रचलित नैतिकता के प्रतिकूल सव्यवहारों (transactions) के अविधिमान्यकरण (invalidating) द्वारा सामान्य नैतिकता के संरक्षण में हित, (घ) सामाजिक साधनों के परिरक्षण में हित, (ड.) सामान्य उन्नति में हित जो शिक्षा की स्वतंत्रता, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सम्पति, व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता द्वारा प्राप्त किया जाना और (च) मानव व्यक्तित्व के उन्नयन में हित। वह उन प्रवृत्तियों का भी पता लगाता है जिन्होंने इन हितों की संरक्षा के लिए कार्य किया।

विधि का कार्य -

- मानव-आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति है।
- विधि का कार्य सर्वाधिक बहुमूल्य उद्देश्यों का चयन करना और प्राप्त करना है।
- एलेन इसे प्रयोगात्मक विधिशास्त्र कहता है।

न्यायिक आधार (Jural Postulates):

तत्कालीन अमरीकी समाज की इच्छाओं, आवश्यकताओं और मांगों को ध्यान में रखते हुए सन् 1919 में रास्को पाउण्ड ने जिन न्यायिक अभ्युपगमों को प्रस्तुत किया उनका विवरण नीचे दिया है। पाउण्ड के अनुसार -

1. प्रत्येक सभ्य समाज में मनुष्य यह आकांक्षा करता है कि दूसरे लोग उस पर जानबूझ कर आक्रमण न करें।
2. उन्नत सभ्य समाज में मनुष्य यह प्रत्याशा कर सकता है कि तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में उसने जो कुछ पाया या स्वयं के परिश्रम से अर्जित किया है, उसे अपने लाभ के लिये स्वयं के नियंत्रण में रख सके।
3. प्रत्येक सुसभ्य समाज में मनुष्य यह प्रत्याशा कर सकता है कि वह समाज के जिन विभिन्न व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है, वे उसके प्रति सद्भावपूर्ण व्यवहार करें।
4. विकसित समाज में मनुष्य यह आशा कर सकता है कि जो व्यक्ति किसी कार्य को सम्पादित करने में लगा है, वह अपने कार्यों को इतनी सावधानी पूर्वक करे जिससे दूसरों को किसी प्रकार की हानि न पहुंचे।

5. प्रत्येक सभ्य समाज में मनुष्य यह आशा कर सकता है कि वे व्यक्ति जो ऐसी वस्तुएं रखे हुए हैं जिनमें निकल भागने की या पलायन करने की क्षमता है तथा जिनके निकल भागने पर अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों को हानि होने की संभावना है, तो ऐसे व्यक्ति उन वस्तुओं को पूर्णतः नियंत्रण में रखेंगे ताकि वे अन्य व्यक्तियों को हानि न पहुंचा सकें।

हितों के बीच संतुलन कैसे रखें?

- विभिन्न हितों का मापन एक ही आधार पर होना चाहिये।
- यदि किसी हित का अन्तरण किया जाता है, तो यह केवल सामाजिक आधार पर ही होगा।
- उदाहरण के लिए, व्यक्तिगत स्वतंत्रता सामाजिक स्वतंत्रता में अन्तरित होगी।
- नयी समस्याओं के लिए नयी स्थितियां उत्पन्न होंगी जिसके लिए विद्यमान विधि पर्याप्त नहीं होगी। इसलिए, न्यायाधीश बिना विधि के ही न्याय करेंगे।

आलोचना -

1. यह केवल विधि के कार्यपरक पहलू पर प्रकाश डालता है।
2. मूल्यांकन की कसौटी की कमी।
3. भ्रामक, संतुलन रखने वाला रूपक (metaphor)।
4. यह न्यायिक सक्रियता पर बल देता है जो कि विधायन से बड़ा है।
   - न्यायपालिका की अपनी सीमायें हैं।
5. हितों को विभिन्न वर्गों में सीमित नहीं कर सकते हैं क्योंकि विभिन्न हितों के मूल्य युग एवं समान के अनुसार बदलते रहते हैं।
6. भारत में प्रयोज्यता -
   - हितों को सामंजस्य करना सदैव संभव नहीं है। उदाहरण के लिए, श्रम-पूंजी या जमीन मालिक-किरायेदार।

क्यूनी (Quinney):

- विधि एक सामाजिक प्रतिफल है।
- बहुसंख्यक हित/अल्पसंख्यक हित
- भारत में अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण ने वास्तव में समस्या को गुरूतर बना दिया है।
- मौलिक अधिकार/राज्य के नीति निर्देशक तत्व

7. अन्तर्विरोध/समाज का मतैक्य स्वरूप -

पाउण्ड का सिद्धांत केवल आदर्श समाज के लिए सुसंगत है। समाजशास्त्रीय चिंतन के प्रेणेता।

ऑस्टिन कौम्टे -

- सर्वप्रथम पद 'समाजशास्त्र' का प्रयोग किया।
- 'समाजशास्त्र के विज्ञान' का संस्थापक
- विकास सिद्धांत - समाज एक जैविकता (शरीर की तरह होने - organisms) है।
- प्रेरित डर्कहेम, जिसने ड्यूगिट को प्रेरित किया।

डर्कहेम (Durkheim):

- समाज में दो प्रकार की आवश्यकताओं के बीच अन्तर किया - (i) सामान्य आवश्यकता और (ii) व्यक्तिगत आवश्यकता।
- श्रम विभाजन (Division of labour)
- सामाजिक समेकता (social solidarity) का सिद्धांत

ड्यूगिट (Duguit):

- "विधि एक ऐसा नियम है, जिसे मनुष्य किसी श्रेष्ठतर सिद्धान्त, चाहे वह जो कुछ भी हो भलाई, हित, या सुख के कारण नहीं, अपितु तथ्यों की विवशता के कारण मानते हैं क्योंकि वे समाज में रहते हैं और समाज में ही रह सकते हैं।"
- राज्य सम्प्रभुता का पतन होता है।
- विकेन्द्रीकरण बढ़ता है - संघवाद (syndicalism) बढ़ता है।
- प्राइवेट और लोक नीति के बीच अन्तर नहीं है।
- कोई प्राइवेट अधिकार नहीं - "एकमात्र अधिकार जो मनुष्य का हो सकता है, वह सदैव अपने कर्तव्य को करने का अधिकार है।"

गीर्के -

- जर्मन विधिशास्त्री।
- समूह व्यक्तित्व की वास्तविकता (reality of group personality) का सिद्धांत
- हौरू (रिनार्ड)
- ड्यूगिट का प्रभाव
- फ्रेंच
- सांस्थापिक सिद्धांत (institutional theory)
- रूडोल्फ इहरिंग
- प्रथम महान समाजशास्त्रीय न्यायविद्
- एक सामाजिक उपयोगितावादी
- वह ऑस्टिन, बेंथम और मिल के विचारों को जारी रखता है।
- "विधि का विकास उसकी उत्पत्ति के समान ही न तो स्वतः होता है और न शान्तिपूर्ण।" यह शान्ति और व्यवस्था उपलब्ध करने की दृष्टि से सतत संघर्ष या विरोध का परिणाम है। इहरिंग कहता है, "विधि समाज के जीवन की स्थितियों की गारंटी है, जो राज्य की बाध्यता की शक्ति द्वारा सुनिश्चित होती है।"
- विधि राज्य द्वारा एक सुनिश्चित रूप में संगठित बल प्रयोग है।
- दंड का सिद्धांत - दंड सामाजिक उद्देश्य प्राप्त करने का एक साधन है।
- अधिकतम सुख का पाना और दुख का निवारण विधि का उद्देश्य है (बेंथम की तरह)
- कोर्कनोव उसके समर्थक है।
- फ्रीडमैन उसे 'वर्तमान सामाजिक विधिशास्त्र के जनक' कहते हैं।
- एहरलिच - किसी समुदाय की विधि सामाजिक तथ्यों में पायी जाती है न कि विधि के औपचारिक स्रोतों में।
- "वर्तमान काल में तथा किसी अन्य काल में विधिक विकास का गुरुत्व केन्द्र (centre of gravity) विधान में स्थित नहीं होता है, न न्यायशास्त्रीय विज्ञान (juristic science) में, न ही न्यायिक विनिश्चयों में होता है अपितु स्वयं समाज में स्थित होता है।"

विधि के तथ्य -

1. रिवाज (usage)
2. सत्ता (domination)
3. कब्जा (possession)
4. इच्छा की घोषणा (declaration of will)

- एलेन इसे मदोन्मादात्मक विधिशास्त्र (Megleamanic Jurisprudence) कहा है।

कृत्यात्मक विचारधारा (Functional School): -

डीन पाउण्ड -

इस विचारधारा के संस्थापक विधि अमूर्त मान (abstract norms) के समूह या विधिक आदेश (legal order) से अधिक है - यह समाज में अन्तर्विरोधी रखने वाले हितों और अधिकतम आवश्यकताएं और निम्नतम संघर्ष की तुष्टि अर्जित करने के बीच संतुलन करने की प्रक्रिया है (यह उद्देश्यपरक के अनुरूप है)। कृत्यात्मक विचारधारा का वामपक्ष (left wing of the functional school) को यथार्थवादी विचारधारा की संज्ञा दी गई है। यथार्थवादी अपनी बौधिक वंशावली को होम्स के अविश्वास (scepticism of Holmes) में पता लगाते हैं।

लैवेलिन का निष्कर्ष है कि यथार्थवादियों के अनुसार विधि का उद्देश्य निम्न सामाजिक हितों की पूर्ति करना है, होना चाहिए की जगह हैं' को प्रयुक्त करना) होना चाहिए से' से है' को पृथक करना।

यथार्थवादी विचारधारा (Realist School) (होम्स, ग्रे, फ्रेंक, लैवेलिन, हेगरस्ट्रीम, ओलाइवक्रोना)।

- "विधि कभी भी है' (is) नहीं, बल्कि सदैव होना चाहती है।"
- विधि का अध्ययन इसके सामाजिक प्रभावों के लिए किया जाता है।
- विशेष बल विधिक निर्णयों पर दिया जाता है।
- इसे 'कृत्यात्मक विचारधारा का वामपक्ष' भी कहते हैं।
- यह समाजशास्त्रीय विचारधारा से इस अर्थ से भिन्न है कि यह विधि के उद्देश्यों से सरोकार नहीं रखता है। यह विधि के निर्माण और कार्य करने में उसके एक वैज्ञानिक निरीक्षण पर अपने का लगाता है। इस आन्दोलन को 'यथार्थवादी' नाम दिया गया है क्योंकि इसमें विधि का अध्ययन जैसी वह वस्तुतः कार्यकरण (actual working) में है और जो उसका प्रभाव है उसका किया जाता है।
- होम्स और ग्रे यथार्थवादी विचारधारा के बीच हैं।
- 'विधि वही है जिसे न्यायाधीश घोषित करते हैं' (Grey in "Nature and Sources of Law")
- Holmes in "The Path of the Law" - यह भविष्यवाणी कि 'वास्तव में न्यायालय का निर्णय का होगा' विधि है, तथा अन्य सभी तर्क व्यर्थ होते हैं।
- इतिहास पर आधारित राष्ट्रीय नीति पर विधि का अध्ययन।
- यह सिद्धांत डोग्मा ऑफ लॉ (dogma of law) का सबसे महत्वपूर्ण अंश है।
- विधिक सिद्धांत की आवश्यकता - जेरोम फ्रेंक 'Law and Modern mind' में।
- विधि की निश्चितता एक विधिक कपोल-कल्पना (myth) है।
- फादर-कम्पलेक्स (Father Complex), जिसमें कोई व्यक्ति निश्चितता की बात सोचता है। उसने विधिक्षेत्र में फ्रायडवादी दृष्टिकोण को लिया है।
- वकीलों और न्यायाधीशों के लिये यह उचित नहीं कि वे 'पूर्व निर्णय' (precondent) या संहिताकरण के नाम पर विधिक निश्चितता की कपोल-कल्पना से चिपकें।

लिवेलिन -

- यथार्थवादी पारम्परिक और विधिक नियमों और संकल्पनाओं पर भरोसा नहीं करते हैं।
- समाज विधि की अपेक्षा तेजी से बदलता है।
- है' और 'होना चाहिए' के बीच अस्थायी विच्छेद।
- विधिवेत्ताओं को इस बात का परीक्षण करना चाहिए कि विधि समकालीन समस्याओं से कैसे मिलती है।
- न्यायालय क्या करेंगे, नियम इसके सामान्यकृत भविष्यवाणी होते हैं।
- कोई यथार्थवादी विचारधारा नहीं है, यर्थाथवाद का अभिप्राय विधि के संबंध में चिंतन और कार्य में गति।
- केस लॉ के अध्ययन पर जोर देता है और इसके अलावे, न्यायाधीश और जूरी के व्यक्तित्व पर भी।
- हेगरस्ट्रोम और ओलाइवक्रोना (स्वीडन के न्यायविद्) भी यथार्थवादी हैं।

- ओलाइवक्रोना कहते हैं कि विधि की प्रकृति का विश्वव्यापी विधिमान्यता है।

बनाम सामाजिक विचारधारा –

- यथार्थवादी विचारधारा यह भी कहती है कि विधि का अध्ययन इसके सामाजिक प्रभावों के लिए करना चाहिए किन्तु यह विधिक निर्णयों पर विशेष ध्यान देता है।

प्राकृतिक विचारधारा – कुछ तथ्य

ग्रोशियस (Grotius) (1583–1645):

ग्रोशियस ने अपना विधिक सिद्धान्त 'संविदा' पर खड़ा किया। संक्षेप में, उसका विचार यह है कि राजनीतिक समाज का आधार सामाजिक संविदा है। संप्रभु 'प्राकृतिक विधि' द्वारा आबद्ध है। प्रकृति की विधि का मनुष्य की युक्ति द्वारा पता लगाया जा सकता है। इस पर सावधानीपूर्वक ध्यान दिया जाना चाहिये कि ग्रोशियस की 'युक्ति' टामस की 'युक्ति' के समरूप नहीं है। यह मनुष्य की अपने आप से समर्थित (self-supporting) युक्ति है।

हॉब्स (Hobbes) (1588–1679):

हॉब्स का सिद्धान्त भी 'सामाजिक संविदा' को आधार बना कर चलता है। 'सामाजिक संविदा' से पूर्व मनुष्य अव्यवस्थित दशा में रहता था। अपनी रक्षा का विचार और दुःख और पीड़ा से बचना उसकी प्रकृति में निहित है। वह सामाजिकता की भी इच्छा रखता है। इन स्वाभाविक प्रवृत्तियों ने उसे संविदा करने के लिये और अपनी स्वतंत्रता और शक्ति को किसी सत्ता को सौंप देने (surrender) के लिये प्रेरित किया। प्रकृति की विधि का पता 'युक्ति' द्वारा लगाया जा सकता है जो यह कहती है कि किसी मनुष्य को क्या करना चाहिये और उसे क्या नहीं करना चाहिये? सुरक्षा और व्यवस्था की मनुष्य की एक स्वाभाविक इच्छा होती है। इसे केवल एक ऐसी सच्ची सत्ता को स्थापित करके ही प्राप्त किया जा सकता है—जिनका आज्ञापालन किया जाये। इसलिये हॉब्स निरंकुश शासनवाद (absolutism) का समर्थक है।

लॉक (Lock) (1632–1704):

लॉक के अनुसार, प्राकृतिक अवस्था स्वर्ण-युग थी, केवल संपत्ति ही असुरक्षित थी। संपत्ति की संरक्षा के प्रयोजन के लिए ही मनुष्यों ने सामाजिक संविदा की। इस संविदा के अधीन मनुष्य ने अपने सारे अधिकारों को नहीं सौंपा (surrender) अपितु केवल उनके एक भाग को सौंपा, नामतः व्यवस्था कायम रखने के अधिकार को और प्रकृति की विधि को प्रवृत्त (enforce) करने के लिए अपने प्राकृतिक अधिकार जैसे, जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति का अधिकार उसने अपने पास रखा। सरकार और विधि का प्रयोजन प्राकृतिक अधिकारों को कायम रखना और उनकी संरक्षा करना है।

लॉक का सिद्धांत हॉब्स के विपरीत है। पूर्ववर्ती स्वतंत्रता का समर्थन करता है जबकि पश्चात्वर्ती प्राधिकार का समर्थन करता है।

रूसो (1721–1778):

उसके अनुसार 'सामाजिक संविदा' एक ऐतिहासिक तथ्य नहीं है अपितु युक्ति की एक काल्पनिक (hypothetical) बात है। इस संविदा के पूर्व मनुष्य सुखी और स्वतंत्र था और मनुष्यों के बीच समता थी। स्वतंत्रता और समता के अपने अधिकारों की रक्षा के लिए मनुष्य 'सामाजिक संविदा' द्वारा एकजुट हुए। इसके लिए उन्होंने अपने अधिकारों को किसी एकमात्र व्यक्ति-संप्रभु को नहीं, अपितु समुदाय के पक्ष में जिसे रूसो 'सामान्य-इच्छा' (general will) का नाम देता है, सौंप (surrender) दिया।

उस 'सामान्य-इच्छा' का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है क्योंकि ऐसा करने में वह अप्रत्यक्ष रूप से अपनी—स्वयं की इच्छा का पालन करता है। राज्य का अस्तित्व स्वतंत्रता और

समता की संरक्षा करने के लिए है। राज्य और इसके द्वारा बनायी गई विधियां दोनों 'सामान्य इच्छा' के अधीन हैं जो राज्य की सृष्टि करती हैं।

स्टैम्मलर (Stammler):

स्टैम्मलर का कहना है कि 'सम्पूर्ण विध्यात्मक विधि न्यायपूर्ण विधि (होने) के लिये एक प्रयास है' और जो न्यायपूर्ण विधि अथवा न्याय है वह सामाजिक जीवन के ढांचे में इच्छाओं या प्रयोजनों का एक सामंजस्य है। इच्छाओं या प्रयोजनों का सामंजस्य देश और काल के अनुसार बदलता रहता है। इच्छाओं और प्रयोजनों के ज्ञान के लिये जीवन्त (living) सामाजिक संसार के यथार्थ संपर्क में आना होगा। वह यह निर्णय करने में समर्थ बनायेगा कि कौन प्रयोजन विधिक मान्यता के पात्र हैं। इस प्रक्रिया से यह पता लगाया जा सकता है कि सापेक्ष रूप से क्या न्यायपूर्ण है और यही वह 'न्यायपूर्ण' है जिसे प्राप्त करने का विधि को प्रयास करना चाहिये। विधि इस 'न्यायपूर्ण' के अनुरूप न होने पर भी मान्य है किन्तु इसे अपने लक्ष्य के निकट ले जाने का प्रयास किया जाना चाहिये। इस संकल्पना को स्टैम्मलर ने 'परिवर्तनीय तत्वयुक्त प्राकृतिक विधि' कहा है।

कोहलर (Kohler):

कोहलर विधिक इतिहास की एक नयी व्याख्या करता है। वह कहता है कि विधिक व्याख्या भौतिकवादी नहीं होनी चाहिये। विकासक्रम में समाज नैतिक रूप से और सांस्कृतिक रूप से भी उन्नति करता है। संस्कृति की अपेक्षाओं को विचार में रखते हुये, विधि अपने प्रयोजन की अधिक अच्छे रूप में पूर्ति कर सकती है। इस स्थिति को इस दृष्टि से देखना विधि के वास्तविक लक्ष्य को जानने के लिये समर्थ बनायेगा। वह कहता है कि कोई चिरस्थायी (eternal) विधि नहीं है।

एच. एल. हार्ट (H. L. Hart):

वह विध्यात्मवाद (positivism) को प्राकृतिक विधि से जोड़ता है। उसने प्राकृतिक विधि की स्थिति को अर्द्ध समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से पुनः कथित करने का प्रयत्न किया है। वह कहता है कि कतिपय स्थायी (substantive) नियम है जो यदि मानव प्राणी लगातार एक साथ निकटता से रहना चाहते हैं, तो अनिवार्य हैं। ये सीधे तथ्य प्राकृतिक विधि के सिद्धांत में एक अविवाद्य (undisputable) सत्य का केन्द्र हैं। हार्ट मनुष्य के प्रमुख लक्ष्य के रूप में जीवित रहने की धारणा पर पहला जोद देता है। हम लगातार अस्तित्व के लिए सामाजिक व्यवस्था की चिंता करते हैं। इसलिए कतिपय ऐसे नियम हैं जिसे किसी भी सामाजिक संगठन को धारण करना चाहिए और मानव प्रकृतिके ये ही वे तथ्य हैं जो प्राकृतिक विधि के 'न्यूनतम तत्व' का परम सिद्धांत अपनाने के लिए कारण प्रदान करते हैं।

फिनिस -

उसके अनुसार प्राकृतिक विधि मानव जीवन और मानव समुदाय को व्यवस्थित करने में व्यावहारिक युक्तियुक्तता (reasonableness) के सिद्धांतों का समूह है। वह यह नियम रखता है कि मानव प्राणियों के लिए कतिपय बुनियादी हित हैं। प्राकृतिक विधि के ये बुनियादी सिद्धांत नैतिकता पूर्व (pre-moral) हैं। ये बुनियादी हित इस अर्थ में वस्तुनिष्ठ (objective) मूल्य हैं कि प्रत्येक युक्तियुक्त व्यक्ति प्रयत्न के विषय के रूप में उनके मूल्य को मानेगा। फिनिस सात बुनियादी प्रकार के हितों का उल्लेख करता है, जो निम्नलिखित हैं -

1. **जीवन** - पहला बुनियादी मूल्य जो आत्मरक्षण के लिए कार्य को प्रेरित करता है। 'जीवन' शब्द प्रत्येक प्रकार की ताकत को बताता है जो एक मानव प्राणी को आत्म-निश्चय के लिए भला चंगा रखती है।
2. **ज्ञान** - मिथ्या विश्वास पर सत्य को वरीयता। यह उस बुनियादी मूल्य के समरूप है जिसे हम जिज्ञासा कहतें हैं। यह कार्य जो हमें आत्मघोषित (self proclaimed) अज्ञानता अथवा अंधविश्वास को नकार देने पर ले जाता है। यह ज्ञान है जिसका अपने आप में महत्व है न

समता की संरक्षा करने के लिए है। राज्य और इसके द्वारा बनायी गई विधियां दोनों 'सामान्य इच्छा' के अधीन हैं जो राज्य की सृष्टि करती हैं।

स्टैम्मलर (Stammler):

स्टैम्मलर का कहना है कि 'सम्पूर्ण विधात्मक विधि न्यायपूर्ण विधि (होने) के लिये एक प्रयास है' और जो न्यायपूर्ण विधि अथवा न्याय है वह सामाजिक जीवन के ढांचे में इच्छाओं या प्रयोजनों का एक सामंजस्य है। इच्छाओं या प्रयोजनों का सामंजस्य देश और काल के अनुसार बदलता रहता है। इच्छाओं और प्रयोजनों के ज्ञान के लिये जीवन्त (living) सामाजिक संसार के यथार्थ संपर्क में आना होगा। वह यह निर्णय करने में समर्थ बनायेगा कि कौन प्रयोजन विधिक मान्यता के पात्र हैं। इस प्रक्रिया से यह पता लगाया जा सकता है कि सापेक्ष रूप से क्या न्यायपूर्ण है और यही वह 'न्यायपूर्ण' है जिसे प्राप्त करने का विधि को प्रयास करना चाहिये। विधि इस 'न्यायपूर्ण' के अनुरूप न होने पर भी मान्य है किन्तु इसे अपने लक्ष्य के निकट ले जाने का प्रयास किया जाना चाहिये। इस संकल्पना को स्टैम्मलर ने 'परिवर्तनीय तत्वयुक्त प्राकृतिक विधि' कहा है।

कोहलर (Kohler):

कोहलर विधिक इतिहास की एक नयी व्याख्या करता है। वह कहता है कि विधिक व्याख्या भौतिकवादी नहीं होनी चाहिये। विकासक्रम में समाज नैतिक रूप से और सांस्कृतिक रूप से भी उन्नति करता है। संस्कृति की अपेक्षाओं को विचार में रखते हुये, विधि अपने प्रयोजन की अधिक अच्छे रूप में पूर्ति कर सकती है। इस स्थिति को इस दृष्टि से देखना विधि के वास्तविक लक्ष्य को जानने के लिये समर्थ बनायेगा। वह कहता है कि कोई चिरस्थायी (eternal) विधि नहीं है।

एच. एल. हार्ट (H. L. Hart):

वह विधात्मवाद (positivism) को प्राकृतिक विधि से जोड़ता है। उसने प्राकृतिक विधि की स्थिति को अर्द्ध समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से पुनः कथित करने का प्रयत्न किया है। वह कहता है कि कतिपय स्थायी (substantive) नियम है जो यदि मानव प्राणी लगातार एक साथ निकटता से रहना चाहते हैं, तो अनिवार्य हैं। ये सीधे तथ्य प्राकृतिक विधि के सिद्धांत में एक अविवाद्य (undisputable) सत्य का केन्द्र हैं। हार्ट मनुष्य के प्रमुख लक्ष्य के रूप में जीवित रहने की धारणा पर पहला जोर देता हैं। हम लगातार अस्तित्व के लिए सामाजिक व्यवस्था की चिंता करते हैं। इसलिए कतिपय ऐसे नियम हैं जिसे किसी भी सामाजिक संगठन को धारण करना चाहिए और मानव प्रकृतिके ये ही वे तथ्य हैं जो प्राकृतिक विधि के 'न्यूनतम तत्व' का परम सिद्धांत अपनाने के लिए कारण प्रदान करते हैं।

फिनिस -

उसके अनुसार प्राकृतिक विधि मानव जीवन और मानव समुदाय को व्यवस्थित करने में व्यावहारिक युक्तियुक्तता (reasonableness) के सिद्धांतों का समूह है। वह यह नियम रखता है कि मानव प्राणियों के लिए कतिपय बुनियादी हित हैं। प्राकृतिक विधि के ये बुनियादी सिद्धांत नैतिकता पूर्व (pre-moral) हैं। ये बुनियादी हित इस अर्थ में वस्तुनिष्ठ (objective) मूल्य हैं कि प्रत्येक युक्तियुक्त व्यक्ति प्रयत्न के विषय के रूप में उनके मूल्य को मानेगा। फिनिस सात बुनियादी प्रकार के हितों का उल्लेख करता है, जो निम्नलिखित हैं -

1. जीवन - पहला बुनियादी मूल्य जो आत्मरक्षण के लिए कार्य को प्रेरित करता है। 'जीवन' शब्द प्रत्येक प्रकार की ताकत को बताता है जो एक मानव प्राणी को आत्म-निश्चय के लिए भला चंगा रखती है।
2. ज्ञान - मिथ्या विश्वास पर सत्य को वरीयता। यह उस बुनियादी मूल्य के समरूप है जिसे हम जिज्ञासा कहते हैं। यह कार्य जो हमें आत्मघोषित (self proclaimed) अज्ञानता अथवा अंधविश्वास को नकार देने पर ले जाता है। यह ज्ञान है जिसका अपने आप में महत्व है न

व्यवहार करने के लिए कैसे आदिष्ट है। प्रत्येक बीज का अपना उचित कार्य है और so to be good of its kind इसे इस कार्य की पूर्ति अवश्य करनी चाहिए।

आगे, आलोचकों का तर्क है कि मानव की तुलना मोटरकार जैसी वस्तु से नहीं की जा सकती है। मोटरकार का निर्माण कुछ निश्चित कार्यों और कुछ निश्चित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए होता है।

प्राकृतिक विधि सिद्धांत की दूसरी कमजोरी है इसका नैतिकता के सर्वस्व सिद्धांत में विश्वास किन्तु समाज भिन्न होता है और समय बदलता रहता है।

इस कमी को दूर करने का प्रयास रूडोल्फ स्टैम्मलर जैसे लेखक ने किया है जिन्होंने प्राकृतिक विधि के विचार का योग्य विषयवस्तु के साथ लेते हुए विचार किया है।

प्राकृतिक विधि का सिद्धांत नें यू. एन. चार्टर के आधार का रूप दिया है। फ्रीडमैन ने सम्प्रेक्षित किया कि "प्राकृतिक विधि के सबसे महत्वपूर्ण और स्थायी सिद्धांत निस्संदेह दो आदर्शों द्वारा प्रभावित हुये हैं - सभी व्यक्तियों को शासित करने वाले सर्वस्व आदेश का तथा व्यक्ति के अ-अन्यसंक्राम्य (inalienable) के आदेश का।"

आज्ञात्मक सिद्धांत या आदेशात्मक सिद्धांत -

ऑस्टिन आगे सम्प्रेक्षित करते हैं कि विधयात्मक विधि ऐसे आदेशों का समूह है जो एक संप्रभुताधारी द्वारा किसी स्वतंत्र राजनयिक समाज में प्रजा के व्यवहारों को निर्धारित करने के लिए तैयार किये गये हों।

Rough

विधि के स्रोत
Sources of law

सामंड के अनुसार विधि के विधिक स्रोत वे हैं जो कि आधिकारिक (authoritative) हैं। उनको इस रूप में स्वयं विधि द्वारा इस मान्य किया गया है। जबकि ऐतिहासिक स्रोत विधि के शेष स्रोत ऐतिहासिक स्रोत हैं। ये अप्रमाणिक (unauthoritative) हैं।

विधिक स्रोत के प्रकार -

1. रूढ़ि (custom) - रूढ़िगत विधि को जन्म देती है।
2. पूर्ण-निर्णय (Precedent) - निर्णयज विधि को जन्म देता है।
3. विधायन (Legislation) - अधिनियमित विधि को जन्म देता है।
4. करार (Agreement) - रूढ़िगत विधि को जन्म देता है।

रूढ़ि की प्रकृति और उत्पत्ति -

रूढ़ि की अपनी उत्पत्ति लोगों द्वारा कुछ निश्चित कार्य कुछ निश्चित ढंग से करने के रिवाज या प्रथा में पायी जाती है और इसकी विशेषताओं में से एक यह है कि इसका निर्माण सजगपूर्वक नहीं होता है।

रूढ़िगत विधि में विकसित होने वाली प्रथा विधि बनाने का पुराना रूप है और यह अपने पूर्व के प्रक्रमों में अपनी विधिमान्यता के लिए उन लोगों की इच्छा पर निर्भर करती है जो इसे सुपुर्द करने के लिए प्रथा का अनुसरण करते हैं।

रूढ़ि -

रूढ़ि विधिदात्री के लिए लाभप्रद है और यह निम्नलिखित दो रूपों में संहिताकृत है -

1. यह आवश्यक तत्वों को प्रदान करती है जिससे विधि निर्मित हो सकती है और प्रचलित हो सकती है, विधि को डि नोवो (de novo) अर्थात् 'नए सिरे से' बनाने संबंधी कार्य के लिए उच्च कोटि के बौद्धिक कार्य की अपेक्षा की जाती है।
2. रूढ़ि पर आधारित विधि के लिए स्वीकृति और सम्मान को प्राप्त करना आसान है जिसका पालन बहुत लंबे समय तक किया गया है।

आज के विश्व में रूढ़ि पूर्व निर्णय और विधान के विकास के कारण अपनी प्रभावकारिता खो दी है।

रूढ़ि के प्रकार -

उन रूढ़ियों को जिसकी विधि का बल है, विधिक और परम्परागत रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं विधिक रूढ़ियों को सामान्य और स्थानीय रूढ़ियों में बांटा जा सकता है -

विधिक रूढ़ि (Legal Custom):

ये रूढ़ियां विधि के एक आबद्धकर नियम के रूप में लागू होती हैं। वे न्यायालयों द्वारा मान्य की गई होती हैं और देश की विधि का एक भाग बन गई होती हैं। उनको न्यायालयों द्वारा लागू किया जाता है।

पारम्परिक रूढ़ि -

कन्वेन्शनात्मक रूढ़ियां वे रूढ़ियां हैं जो किसी करार के पक्षकारों को शासित करती हैं। पक्षकार कभी-कभी अभिव्यक्त रूप से (expressly) और कभी-कभी संकेत रूप से (impliedly) (इसका अर्थ है कि वे सहमत हुये समझे जाते हैं) उनके बारे में सहमति रखते हैं। उनको प्रथाएं भी कहा जाता है। ऐसी रूढ़ियां "अपने द्वारा स्वतंत्र रूप से रखे जाने वाले किसी विधिक प्राधिकार के कारण नहीं

अपितु इसलिये कि इसको एक संविदा के पक्षकारों ने संविदा में अभिव्यक्त रूप से या संकेत रूप से अन्तर्विष्ट किया है, आबद्धकर होती है।"

विधिक रूढ़ियों के समान ही कन्वेन्शनात्मक रूढ़ियां भी या तो (1) सामान्य या (2) स्थानीय होती हैं। स्थानीय कन्वेनशनात्मक रूढ़ियां या तो किसी विशिष्ट स्थान या बाजार या किसी विशिष्ट व्यापार या संव्यवहार तक सीमित होती हैं।

विधिक रूढ़ि और पारम्परिक रूढ़ि के बीच अन्तर –

1. मान्य विधिक रूढ़ि को स्मरण के बाहर के काल से (time immemorial) अस्तित्व में होना चाहिए। ऐसी प्राचीनता (antiquity) तथापि रीति की विधिमान्यता का समर्थन करने के लिए आवश्यक नहीं है।
2. पारम्परिक रूढ़ियां विवक्षित होती हैं, यदि वे देश की सामान्य विधि के विरोध में नहीं हैं। विरोध की स्थिति में, फिर भी, ऐसी रीति को पक्षकारों के बीच स्पष्ट करार के द्वारा प्रयोज्य बनाया जा सकता है। विधिक रूढ़ि, बदले में हो सकती है – (1) सामान्य या (2) स्थानीय।

सामान्य रूढ़ियां या सामान्य विधिक रूढ़ियां –

सामान्य रूढ़ियां वे रूढ़ियां हैं जो राज्य के समस्त सीमा क्षेत्र में लागू होती हैं। यद्यपि 'रूढ़ि' शब्द के सामान्य प्रयोग से अर्थ 'स्थानीय रूढ़ि' से है, किन्तु ये सामान्य रूढ़ियां जिनको देश की विधि का भाग माना जाता है, सामान्य विधिक रूढ़ियां हैं।

स्थानीय रूढ़ियां –

स्थानीय रूढ़ियों से तात्पर्य उन रूढ़ियों से है जो किसी नियत स्थान अर्थात् एक जिले या नगर में ही लागू होती हैं। तथापि वे केवल भौगोलिक स्थान को ही लक्षित नहीं करती। कभी-कभी कतिपय संप्रदाय या कुटुम्ब जहां कहीं भी वे जाते हैं अपनी रूढ़ियां अपने साथ ले जाते हैं। वे भी स्थानीय रूढ़ियां कहलाती हैं।

स्थानीय रूढ़ि का एक वर्तमान उदाहरण *न्यू विन्डसोर कारपोरेशन बनाम मेलर* के वाद में मिलता है, जहां 81 वर्ष की एक वृद्ध महिला ने देश की भूमि पर विधिपूर्ण खेल और मनोरंजन के लिए स्थानीय निवासियों के रूढ़िगत अधिकार को सफलतापूर्वक स्थापित कर दिया।

रूढ़ि के लिए कसौटियां –

इसके पहले कि विधि स्थानीय रूढ़ि को मान्यता देगी, निम्नलिखित नौ कसौटियां पूरी होनी चाहिए –

1. विधि के रूप में मान्य होने के लिए किसी रूढ़ि को स्मरण के बाहर के काल से (time immemorial) अस्तित्व में होना चाहिये (जैसा कि विधि अभिसमय 1189 द्वारा निर्धारित है)।
   सुभानी बनाम नवाब (1941) – जो साबित करना आवश्यक है वह यह है कि रीति लम्बी अवधि तक तथा अपरिवर्तनीयता के साथ व्यवहार में लायी गई है जिसे कि यह दिखाया जा सके कि यह एक सामान्य सम्मति से किसी विशेष जिसे का स्थापित शासित नियम हो गया है।
2. रूढ़ि बिना किसी व्यवधान के सतत् पालन किया गया होना चाहिए। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि रूढ़ि का निरन्तर प्रयोग होना चाहिए परन्तु हर समय, इसे विधिपूर्वक प्रयोग करने के लिए अवश्य संभव किया जाना चाहिए। यदि यह कोई समय के लिए ही विधिपूर्वक अप्रवर्तनीय होती, तो यह मान्य रूढ़ि के रूप में स्थापित नहीं हो सकती।
3. रूढ़ि उपभोग शांतिपूर्वक, स्पष्टतया और अधिकार की तरह अवश्य होना चाहिए। रूढ़ि का आधार यह है कि इसका प्रयोग सम्मति द्वारा होना चाहिए और कोई भी गुप्त और बलपूर्वक प्रयोग सम्मति से नहीं हो सकता है। और भी, किसी अधिकार का उपभोग, जो अनुमति देने

पर निर्भर करता है, मान्य रूढ़ि नहीं हो सकता है, क्योंकि स्पष्टतया, यदि कोई अधिकार होता, तो अनुमति आवश्यक हो जाती।

4. रूढ़ि विधि की नजरों में युक्तियुक्त होनी चाहिए। किसी रूढ़ि की युक्तियुक्तता को विनिश्चित करने का समय इसकी उत्पत्ति का समय होता है।

प्रो. एलेन का कहना है कि युक्तियुक्तता के विषय में यह नियम नहीं है कि 'कोई रूढ़ि स्वीकार की जायेगी यदि यह युक्तियुक्त हो, परन्तु यह है कि जब तक यह अयुक्तियुक्त न हो तब तक स्वीकार की जायेगी'। दूसरे शब्दों में, न्यायालयों को किसी रूढ़ि की उस स्थिति में स्वतंत्रता नहीं है जब कभी भी उनका इसकी पूर्ण न्यायपरता और बुद्धिपूर्णता के बारे में समाधान न हों, या जब कभी वे सोचें कि उनके मत में एक और अच्छा नियम विरचित किया जा सकता है, अन्यथा रूढ़ि का बहुत सारा बल और अलंघ्यता समाप्त हो जायेगी। किसी रूढ़ि को अयुक्तियुक्तता के आधार पर न लागू होने योग्य घोषित करने के लिये यह दिखाना होगा कि यह प्रत्यक्षत: युक्ति के विरुद्ध है।

5. रूढ़ि निश्चित होनी चाहिए।

6. **अनिवार्य observance** - वह रूढ़ि जो विधि के रूप में माने जाने को है, उसे ओपिनियो नेसेसिटेटिस (opinio necessitaties) से समर्थित होनी चाहिए अर्थात् उन लोगों की ओर से नैतिक विश्वास जो रूढ़ि का प्रयोग करते हैं कि यह बाध्यकारी है और न कि केवल वैकल्पिक।

जैसा कि ब्लैकस्टोन ने सम्प्रेक्षित किया है - एक रूढ़ि कि वे सभी निवासी, जो पुल की देख-रेख के लिए होंगे, अच्छे होंगे, किन्तु एक रूढ़ि कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा से उसमें परिदान करेंगे, निष्क्रिय और निरर्थक हैं और वास्तव में यह बिल्कुल कोई रूढ़ि नहीं है।

7. स्टेट्यूट विधि से अनुरूपता - किसी रूढ़ि के विधिमान्य होने के लिये इसे स्टेट्यूट विधि के अनुरूप होना चाहिये। अधिकांश विधि-प्रणालियों में यह एक सुनिश्चित नियम है कि स्टेट्यूट किसी रूढ़ि को निराकृत (abrogate) कर सकती है। यद्यपि ऐतिहासिक विचारधारा के अनुसार रूढ़ि स्टेट्यूट से श्रेष्ठ होती हैं और यह स्टेट्यूट को मान्यताहीन (supersede) कर सकती है किन्तु इस दृष्टिकोण को कहीं भी व्यवहार में मान्य नहीं किया गया है। अंग्रेजी नियम यह है कि किसी रूढ़ि को मान्य नहीं किया जायेगा कि यदि यह कॉमन लॉ के किसी मूल सिद्धान्त के विरोध में है।

8. अन्य रूढ़ियों से अनुरूप अन्यथा वे बिल्कुल अच्छी नहीं हो सकती हैं। इसे अन्य स्थापित रूढ़ियों के विसेध में नहीं होनी चाहिए।

9. रूढ़ि किसी निश्चित स्थानीय जगह पर लागू होनी चाहिए। स्थानीय रूढ़ियां केवल वस्तुएं या निवासियों पर लागू होनी चाहिए।

रूढ़िगत विधि के सिद्धांत -

1. रूढ़ि को विधि का औपचारिक स्रोत होना चाहिए -

ऐतिहासिक विचारधारा का दृष्टिकोण यह है कि रूढ़ि विधि का औपचारिक स्रोत है। जेम्स कार्टर ने Law: Its Origins, Growth, Function में कहा है - समय की शुरूआत से मानव आचरण को जो शासित किया है वह समय के अन्त तक उसे शासित करेगा। मानव स्वभाव में आमूल परिवर्तन होना संभाव्य नहीं है।

कार्टर के विचार - कोई न्यायिक पूर्व निर्णय स्वत: विधि नहीं है किन्तु केवल इसका साक्ष्य वास्तविक विधि रूढ़ि है।

सेलिग्नी - रूढ़िगत विधि पूर्ण हो सकती है, यह किसी स्टेट्यूट में सुधार ला सकती है और निरसित कर सकती है। यह किसी नये नियम का निर्माण कर सकती है और इसे स्टेट्यूटरी नियम के स्थान पर रख सकती है जिसे इसने उत्साहित कर दिया है।

उपरोक्त दृष्टिकोण को सामण्ड के अनुसार इंग्लिश न्यायविदों द्वारा नामंजूर कर दिया गया है। रूढ़ि विधि का प्राकृतिक स्रोत है न कि औपचारिक। रूढ़ि का कार्य उन सिद्धांतों को उपलब्ध कराना है जिससे राज्य की इच्छा विधिक विधिमान्यता प्रदान करती है। रूढ़ि के माध्यम से राज्य विधि के सारवान अन्तर्वस्तु को वापस कर सकता है और उन्हें आकृति और प्रकृति दे सकता है।

2. रूढ़ि एक ऐतिहासिक सारवान स्रोत है -

इस सिद्धांत को ऑस्टियन सिद्धांत भी कहते हैं। ऑस्टिन के अनुसार, रूढ़िगत नियम दो तरह से विधिक नियम के गुण को ले सकता है। इसे संप्रभु या अधीनस्थ विधायियों द्वारा ग्रहण किया जा सकता है और प्रत्यक्ष ढंग से विधि में बदला जा सकता है या इसे न्यायिक निर्णय के लिए आधार के रूप में लिया जा सकता है, जो बाद में पूर्व निर्णय के रूप में प्राप्त करता है और इस स्थिति में, यह न्यायिक चलन (fashion) के बाद विधि में रूपान्तरित हो जाता है।

आलोचना -

ग्लेन - ऑस्टिन के सिद्धांत का दोष यह है कि रूढ़ियां उस समय तक विधि नहीं होती जब तक कि न्यायालय द्वारा उनको ऐसा घोषित न किया जाये। यर्थात् विलोम सच है। रूढ़ि प्रथम और सबसे आवश्यक विधि है।

3. रूढ़ि विधिक सारवान स्रोत है -

होलैण्ड और सालमण्ड (Holland and Salmond) - "रूढ़ि को प्राधिकार न्यायिक मान्यता और अनुमोदन के तथ्यों से निकलता है, किन्तु क्योंकि यह विधि के कुछ निश्चित आवश्यकता के अनुसार इस प्रकार से अनुमोदित हो जायेगा यदि अवसर उत्पन्न होता है।"

पूर्व निर्णय (Precedents):

पूर्व निर्णय विधि का कथन (statement) है जो उच्चतम न्यायालय के निर्णय में सन्निविष्ट होता है, जिसके निर्णय का न्यायालय या इसके अधीनस्थ न्यायालय अनुसरण करता है। इस रूप में, पूर्व निर्णय का सिद्धांत प्रत्येक देश के विधिशास्त्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

पूर्व निर्णयों का लाभ -

1. इस प्रकार की प्रणाली विधि में निश्चितता के तत्व की ओर ले जाती है। यदि कोई मुवक्किल किसी न्यायाभिकर्ता (solicitor) सलाह प्राप्त करना चाहता है, वह अपना विधिक स्थिति जानना चाहता है। जैसा कि न्यायालय पूर्व के निर्णयों का अनुसरण करता है तब अधिकांश वादों में मुवक्किल को सलाह देना संभव होगा।
2. विधि बढ़ने में सक्षम होती है जैसे ही समाज की आवश्यकता बदलती है। नये नियम मूर्त तथ्य परिस्थितियों से उत्पन्न होते हैं। जैसे विरलफाई Kiralty कहते हैं - "वास्तविकता की विधाति पर धीरे-धीरे "forged slowly on the anvil of reality"।
3. इस प्रणाली के अधीन, विधि नम्य होती है। एक सामान्य विनिश्चय आधार विभिन्न तथ्य परिस्थितियों तक प्रसारित हो सकता है।

अलाभ (Disadvantages):

1. एक बार बाध्यकारी पूर्व निर्णय के सोपान स्थापित हो गया हो, तो कठोरता की कुछ निश्चित मात्रा विधि में रेंगने लगती है।
2. अनन्त वितंडावाद (hair splitting) की ओर ले जाता है।

सेलमण्ड - रूढ़िगत विधि पूर्ण हो सकती है, यह किसी स्टेट्यूट में सुधार ला सकती है और निरसित कर सकती है। यह किसी नये नियम का निर्माण कर सकती है और इसे स्टेट्यूटरी नियम के स्थान पर रख सकती है जिसे इसने उत्साहित कर दिया है।

उपरोक्त दृष्टिकोण को सामण्ड के अनुसार इंग्लिश न्यायविदों द्वारा नामंजूर कर दिया गया है। रूढ़ि विधि का प्राकृतिक स्रोत है न कि औपचारिक। रूढ़ि का कार्य उन सिद्धांतों को उपलब्ध कराना है जिससे राज्य की इच्छा विधिक विधिमान्यता प्रदान करती है। रूढ़ि के माध्यम से राज्य विधि के सारवान अन्तर्वस्तु को वापस कर सकता है और उन्हें आकृति और प्रकृति दे सकता है।

2. रूढ़ि एक ऐतिहासिक सारवान स्रोत है -

इस सिद्धांत को ऑस्टियन सिद्धांत भी कहते हैं। ऑस्टिन के अनुसार, रूढ़िगत नियम दो तरह से विधिक नियम के गुण को ले सकता है। इसे संप्रभु या अधीनस्थ विधायियों द्वारा ग्रहण किया जा सकता है और प्रत्यक्ष ढंग से विधि में बदला जा सकता है या इसे न्यायिक निर्णय के लिए आधार के रूप में लिया जा सकता है, जो बाद में पूर्व निर्णय के रूप में प्राप्त करता है और इस स्थिति में, यह न्यायिक चलन (fashion) के बाद विधि में रूपान्तरित हो जाता है।

आलोचना -

एलेन - ऑस्टिन के सिद्धांत का दोष यह है कि रूढ़ियां उस समय तक विधि नहीं होती जब तक कि न्यायालय द्वारा उनको ऐसा घोषित न किया जाये। यर्थात् विलोम सच है। रूढ़ि प्रथम और सबसे आवश्यक विधि है।

3. रूढ़ि विधिक सारवान स्रोत है -

होलैण्ड और सालमण्ड (Holland and Salmond) - "रूढ़ि का प्राधिकार न्यायिक मान्यता और अनुमोदन के तथ्यों से निकलता है, किन्तु क्योंकि यह विधि के कुछ निश्चित आवश्यकता के अनुसार इस प्रकार से अनुमोदित हो जायेगा यदि अवसर उत्पन्न होता है।"

पूर्व निर्णय (Precedents):

पूर्व निर्णय विधि का कथन (statement) है जो उच्चतम न्यायालय के निर्णय में सन्निविष्ट होता है, जिसके निर्णय का न्यायालय या इसके अधीनस्थ न्यायालय अनुसरण करता है। इस रूप में, पूर्व निर्णय का सिद्धांत प्रत्येक देश के विधिशास्त्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

पूर्व-निर्णयों का लाभ -

1. इस प्रकार की प्रणाली विधि में निश्चितता के तत्व की ओर ले जाती है। यदि कोई मुवक्किल किसी न्यायाभिकर्ता (solicitor) सलाह प्राप्त करना चाहता है, वह अपना विधिक स्थिति जानना चाहता है। जैसा कि न्यायालय पूर्व के निर्णयों का अनुसरण करता है तब अधिकांश वादों में मुवक्किल को सलाह देना संभव होगा।
2. विधि बढ़ने में सक्षम होती है जैसे ही समाज की आवश्यकता बदलती है। नये नियम मूर्त तथ्य परिस्थितियों से उत्पन्न होते हैं। जैसे विरलफाई Kiralty कहते हैं - "वास्तविकता की विधाति पर धीरे-धीरे "forged slowly on the anvil of reality"।
3. इस प्रणाली के अधीन, विधि नम्य होती है। एक सामान्य विनिश्चय आधार विभिन्न तथ्य परिस्थितियों तक प्रसारित हो सकता है।

अलाभ (Disadvantages):

1. एक बार ~~बाध्यकारी~~ पूर्व निर्णय के सोपान स्थापित हो गया हो, तो कठोरता की कुछ निश्चित मात्रा विधि में रेंगने लगती है।
2. अनन्त वितंडावाद (hair splitting) की ओर ले जाता है।

हाउस ऑफ लार्ड्स द्वारा उसका शुद्धिकरण किया जा सकता है या तदनुपरांत संसद द्वारा सामान्य बहुमत से शुद्धिकरण किया जा सकता हैं। यदि कोई त्रुटि आस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय द्वारा होती है तथा पश्चात्वर्ती वाद में उसका शुद्धिकरण नहीं किया जाता है, तो प्रिवी कौंसिल उसे सही कर सकता है। यदि हाउस ऑफ लार्ड्स या प्रिवी कौंसिल द्वारा कोई त्रुटि की जाती है तो उसे संसद द्वारा साधारण बहुमत से आसानी से सुधारा जा सकता है। लेकिन संघीय संविधान द्वारा शासित कोई देश जैसे यू. एस. ए. और भारत में, यदि न्यायालय द्वारा गलत निर्वचन होता है तो किसी भी तरह से संविधान में संशोधन करना आसान नहीं है। किन्तु अनुच्छेद 141 उच्चतम न्यायालय के अतिरिक्त अन्य न्यायालयों से भी संबंधित है।

स्टेट ऑफ बम्बे बनाम युनाइटेड मोटर्स (1953) के निर्णय को उलट दिया गया। किन्तु उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित नियमों को प्रतिपादित किया है -

1. पूर्व के निर्णय की समीक्षा करने में, न्यायालय इस तथ्य को विचार में ले सकेगा कि कथित निर्णय का अनुसरण कई मामलों में किया गया है।
2. अपने ही पूर्व के निर्णय को उलटते हुए, उच्चतम न्यायालय को यह स्मरण रखना चाहिए कि जब किसी न्यायालय का निर्णय केवल मुकदमेबाज पर आबद्धकारी है, तब उच्चतम न्यायालय का निर्णय कुछ और अधिक है अर्थात् वह राष्ट्र के लिए घोषणात्मक है। विशेष अर्थ में, जहां पूर्व का निर्णय सांविधानिक पीठ का है, तो बाद के न्यायालय को इसे अन्तिम रूप में मानना चाहिए जब तक विषय राष्ट्रीय जीवन के लिए आधारसूत्र महत्स का न हो।
3. वृहत्त पीठ का विपरित निर्णय लघुत्तर पीठ (smaller bench) के निर्णय पर हावी होता है।
4. न्यायालय निर्वचन के दीर्घ स्थापित नियम से बाहर नहीं निकलेगा जो केवल दिये गये वाद के तथ्यों पर निर्भर करता है।
5. दो न्यायाधीशों का एक खण्ड न्यायपीठ दो अन्य न्यायधीशों के न्यायपीठ के निर्णय को उलट नहीं सकता है। यदि वे एकमत होने योग्य नहीं हैं, तो उन्हें इसे बड़े न्यायपीठ के हवाले कर देना चाहिए।

निर्णीतानुसरण (Stare decisis):

इंग्लिश विधि - पूर्वनिर्णय का यह सिद्धांत ब्रिटेन में एक विशेष रूप ग्रहण किया है जिसे निर्णीतानुसरण का नियम (doctrine of stare decisis) कहते हैं जिसका प्रभाव यह है कि न्यायिक निर्णय का आबद्धकारी बल है और जो स्वतः विधि गुण रखता है and enjoy 'Law quality per se'। आबद्धकारी बल न्यायालय के सोपान पर निर्भर करता है, उच्च न्यायालय अवर न्यायालय को आबद्ध करता है, और इसके विपर्ययन कभी नहीं।

निर्णीतानुसरण का नियम स्थापित करने से पहले दो शर्तें पूरी की जा सकती हैं -

1. कोई सुस्पष्ट आबद्धकारी प्राधिकार के सिद्धांत हो इसके पहले एक स्थापित न्यायिक सोपान अपेक्षित और जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक यह नहीं जाना जा सकता है किसका निर्णय किस पर आबद्धकारी होगा।
2. मामलों का विश्वस्त रिर्पोट भी अपेक्षित है यदि मामले विधि की तरह प्राधिकृत होने को हैं तो वे क्या प्रतिपादित करते हैं इसका ठीक-ठीक अभिलेख होना चाहिए।

सामण्ड के अनुसार, "न्यायिक पूर्व निर्णय का महत्व इंग्लिश विधि का प्रभेद करने वाला गुण रहा है।"

सामण्ड आगे सम्प्रेक्षित करते हैं कि इंग्लैंड में न्यायिक पूर्ण निर्णय प्राधिकार के साथ बोलता है; यह न केवल विधि का साक्ष्य है बल्कि इसका स्रोत भी है और न्यायालय इस तरह से स्थापित विधि का अनुसरण करने के लिए आबद्धकारी है। न्यायिक पूर्व निर्णय भविष्य में वादों का निर्णय करने के लिए बाद्धकारी पूर्वनिर्णय हो जाता है, और विधिक प्रणाली की प्राकृतिक विषयवस्तु में इस तरह से परिदान करता है।

यह सुनिश्चित करने के लिए, पूर्वनिर्णय से संलिप्त होना आवश्यक है कि विधिक पद्धति में, मुकदमेबाज न्याय के उचित प्रशासन तथा निश्चितता की उचित मात्रा में विश्वास न खो सके।

जबकि यह सिद्धांत कि सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय निम्नतम न्यायालय पर आबद्धकारी होते हैं, इसे आसानी से समझा जा सकता है, परन्तु आंग्ल विधि इस अर्थ में आगे बढ़ गयी है कि उच्च स्तर के न्यायालय अर्थात् कोर्ट ऑफ अपील, डिविजन कोर्ट और कोर्ट्स ऑफ क्रिमिनल अपील अपने ही निर्णयों से आबद्ध हैं।

हाउस ऑफ लार्ड्स भी अपने पूर्व के निर्णयों से आबद्ध था। फिर भी सन् 1966 में, हाउस ऑफ लार्ड्स ऑफ लार्ड ने घोषणा की कि उपरोक्त सिद्धांतों के प्रति अनुसक्ति किसी खास मामले में अन्याय कर सकती हैं, इसलिए उन्होंने विचलित होने के लिए या पूर्व के निर्णयों से विरत होने के लिए तब प्रस्ताव किया जब ऐसा करना उचित था।

भारत – निर्णीतानुसरण का सिद्धांत (जो पूर्वनिर्णय का आबद्धकारी बल है) को अनुच्छेद 141 द्वारा सांविधानिक मंजूरी दी गई है।

परन्तु *बंगाल इम्यूनिटि* के वाद में यह धारित किया गया कि अभिव्यक्ति कोर्ट्स (Courts) के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय सम्मिलित नहीं होता है। *मिनर्वा मिल्स वाद* में, उच्चतम न्यायालय में सम्प्रेक्षित किया – निश्चितता और निरन्तरता 'विधि के नियम' के आवश्यक तत्व हैं। किन्तु, निर्णीतानुसरण के सिद्धांत को कठोर और अत्यावश्यक सिद्धांत के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, इसे मुकदमेबाज की कीमत पर अवश्य लागू किया जाना चाहिए।

न्यायिक विधि के सिद्धांत –

पूर्व निर्ण के घोषणात्मक (declaratory) सिद्धांत (ब्लैकस्टोन) –

इस सिद्धांत के अनुसार, कोई न्यायाधीश कभी कोई विधि नहीं बनाता है, बल्कि केवल यह घोषणा करता है कि विधि का विधमान नियम क्या है। ब्लैकस्टोन – "एक न्यायाधीश का निर्धारण उसके अपने प्राइवेट निर्णय अनुसार नहीं होना चाहिए, बल्कि देश के विदित विधियों और रूढ़ियों के अनुसार होना चाहिए और वह नई विधि का सृजन करने के लिए प्रत्यायोजित न हो, बल्कि वह पुरानी विधि को बनाये रखें तथा उसका स्पष्टीकरण करें।"

जबकि जेम्स कार्टर ब्लैकस्टोन के सिद्धांत का समर्थन करता है, परन्तु बेंथम, सामण्ड और ब्राउन इनके सिद्धांत की कड़ी आलोचना की है तथा इसका खंडन भी किया है; इन सभी ने यह माना है कि ब्लैकस्टोन का सिद्धांत महत्व नहीं रखता है जो निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट है –

1. मानव बुद्धि की संकीर्ण परिधि सभी मामलों में नहीं बैठती है ज़हां समय उसे प्रकट कर सकता है। (The narrow compass of human wisdom cannot take in all cases where time may discover)
2. विधि अभिलेखों में तत्वों (materials) की अधिकता।
3. विधिशास्त्र की साम्या का सम्पूर्ण समूह विधि निर्माताओं के रूप में न्यायाधीशों की भूमिका का साक्ष्य होता है।
4. विधिक सिद्धांत सास्वत होते हैं, उनका सुधार न्यायाधीशों के हाथ में होता है।

न्यायाधीश विधि का निर्माण करते हैं –

कोक (Coke) – कोक का यह विचार है कि न्यायिक विनिश्चय विधि के स्रोत नहीं हैं, किन्तु इस बात के सर्वश्रेष्ठ साक्ष्य हैं कि विधि क्या है?

ईशर (Esher) – वस्तुतः न्यायाधीश निर्मित विधि ऐसी कोई वस्तु नहीं है।

स्क्रटन *(हरनेट बनाम फिशर)* – "यह न्यायालय विधि का प्रशासन करने के लिए बैठता है, नई विधि का निर्माण करने के लिए, यदि ऐसे मामले हैं जिनके लिए (विधि में) उपबन्ध नहीं है।"

राजस्थान बनाम स्टेट ऑफ वेस्ट बंगाल में न्यायाधीश हिदायतुल्ला - निस्संदेह न्यायालय द्वारा घोषित विधि सभी न्यायालयों पर आबद्धक होती है किन्तु न्यायाधीश विधान नहीं बनाते हैं।

बेंथम (Bentham) - यह जानबूझकर कहा गया झूठ है, जिसका उद्देश्य उन हाथों द्वारा और उनके लिए विधायी शक्ति की चोरी करना है।

ऑस्टिन (Austin) - यह हमारे न्यायाधीशों द्वारा प्रयुक्त बचकाना कल्पितार्थ (childish fiction) है।

डायसी (Dicey) - अपनी (लॉ एण्ड ओपिनियन इन इंग्लैंड) - "इंग्लैंड की विधि का एक बड़ा भाग, और बहुत से लोग कहेंगे कि सर्वोत्तम भाग, न्यायाधीश निर्मित विधि है, अर्थात् उन नियमों से बना है जो न्यायालयों के निर्णयों से लिये गये हैं।"

बैकन (Beckon) - वह शक्ति, जिसे न्यायाधीश प्रथम बार न्यायालय के समक्ष आने वाले मामलों में विनिश्चय करते हैं, भिन्न अभिदाय (contributory) होते हैं।

ग्रे - "जिस किसी को भी न केवल विधि का निर्वचन करने का, अपितु यह कहने का पूर्ण प्राधिकार होता है कि विधि क्या है, वही वस्तुतः विधिकर्ता है।"

सामण्ड - "स्पष्ट रूप से पूर्व-निर्णय की वास्तविक स्थिति के बारे में मानसिक रूप से उलझन में है।"

लार्ड डेनिंग - प्रत्येक दिन न्यायाधीश विधि बनाते हैं।

गुजरात स्टील बनाम मजदूर सभा के वाद में उच्चतम न्यायालय बिना किसी सन्देह के मान्यता देता है कि न्यायाधीश को अवश्य ही विधि बनानी चाहिए परन्तु वे ऐसा केवल स्वार्थ रहित होकर कर सकते हैं।

एलेन - वह आदमी जो किसी पेड़ को काटकर लट्ठा बनाता है, उसे लट्ठा बनाने का आशय था।

कोर्डोजो भी इसका समर्थन करता है।

पूर्वनिर्णय के प्रकार -

भारत में, संविधान यह उपबंधित करता है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के सभी न्यायालयों पर आबद्धकर होगी। दो या दो से अधिक न्यायाधीशों का एक पीठ उसी न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय से आबद्धकर होता है।

नियम के अपवाद -

1. जहां कोई न्यायालय विनिश्चय करते समय कोई त्रुटि करता है जो वैधानिक उपबन्धों से सचेत नहीं है, तो पूर्वनिर्णय आबद्धकर नहीं होगा।
2. जहां यह किसी उच्च न्यायालय के बाद के पूर्वनिर्णय से विच्छेदित है।
3. पश्चात्वर्ती स्टेट्यूट द्वारा शून्यीकृत एवं परिवर्तित।
4. समान प्रमाणिकता के न्यायालयों का अन्तर्विरोधी पूर्व निर्णय। विधि का सूत्र कि 'विधि का औचित्य समाप्त हो जाने पर विधि भी समाप्त हो जाती है' (cessante ratione leais cessat lex upsa)।

प्रेरणात्मक पूर्वनिर्णय आबद्धकर नहीं होते हैं बल्कि उन्हें उच्च समान प्राप्त है।

घोषणात्मक और मूल पूर्व निर्णय -

न्यायिक निर्णय विधि का क्रियेचर (creature) होते हुये, मूल पूर्वनिर्णय कहलाते हैं जबकि पश्चात्वर्ती घोषणात्मक पूर्वनिर्णय कहलाते हैं।

पूर्वनिर्णय में आबद्धकर तत्व -

(A) विनिश्चय आधार (The ratio decidendi):

किसी वाद के प्रत्येक न्यायाधीश अपना निर्णय देगा और ऐसा नहीं होता कि निर्णय का प्रत्येक हिस्सा न्यायिक पूर्वनिर्णय के रूप में कार्य करेगा। इसलिए, यह महत्वपूर्ण है कि उस न्यायाधीश को,

जो पूर्वनिर्णय के रूप में केस का प्रयोग कर रहा है, यह समझने में समर्थ होना चाहिए कि पूर्व निर्णय का हिस्सा उस पर आबद्धकर है।

पूर्वनिर्णय का भाग, जो आबद्धकर है, विनिश्चय आधार (ratio decidendi) कहलाता है। इसके अन्तर्गत विधि का वह भाग सम्मिलित होता है जो किसी न्यायाधीश के लिए उसके निर्णय देने में आवश्यक है।

इस प्रकार, अभिव्यक्ति 'विनिश्चय आधार' में तीन प्रकार के अर्थ जुड़े हैं -

1. पहला इसका अनुवाद है - यह विनिश्चय करने का कारण है।
2. द्वितीयतः इसका अर्थ विधि का नियम हो सकता है जिसे न्यायाधीश के निर्णय के आधार के रूप में उसके द्वारा भेंट दिया गया है।
3. तृतीयतः इसका अभिप्राय विधि का नियम हो सकता है जिसे अन्य आबद्धकर प्रमाणिकता के रूप में मानते हैं।

शब्द विनिश्चय (decision) का प्रयोग प्रायः अस्पष्टता से किया जाता है, जिसे कि न्यायाधीश द्वारा उसके निर्णय के क्रम में कहे गये सभी शब्दों को समाहित किया जा सके लेकिन यथार्थतः कोई विनिश्चय निर्णय (judgment) का केवल एक हिस्सा होता है।

प्रत्येक विनिश्चय के अन्तर्गत समादित है -

1. तथ्यों और किसी निर्देश का एक कथन, न्यायाधीश इनमें से किसे विधि के विचार के लिए आवश्यक समझते हैं।
2. वास्तविक विनिश्चय की ओर तर्क का विवरण।
3. वास्तविक विनिश्चय interpartes।

एक बार किसी न्यायाधीश को यह मालूम हो जाये कि वह किसी पूर्व केस का जिसे विनिश्चय आधार समझता है, तो वह या तो -

1. अपने समक्ष केस के आधार का प्रयोग करते हुए इसका अनुसरण करेगा (follow it by applying the ratio to the case before him) या
2. वह अपने वर्तमान केस का पूर्व के केस से प्रभेद करेगा या
3. पूर्व के विनिश्चय को उलट देगा।

विनिश्चय आधार का निर्धारण करने के लिए विभिन्न परीक्षण प्रस्तावित किये गये हैं -

1. हालांकि आधार प्राप्त करने का कठिन कार्य वहां है जो यह प्रतिपादित करने में समझौता का एक मापन हो सकता है कि किसी भी नियम को आधार के रूप में नहीं माना जाना चाहिए जो अन्तिम आदेश का समर्थन नहीं कर सके। जहां वर्णित नियम स्पष्टतया तथ्यों से कोई सरोकार नहीं रखता है, यह उक्ति के अलावा कुछ नहीं है।
2. यद्यपि निर्णायक न्यायाधीश को उसके निर्णय के लिए कोई आधार नहीं दिया गया है, तो परवर्ती अधिकरण के लिए यह सम्भव हो सकता है कि वह उसमें से एक निकाल सकता है।

स्टेट ऑफ उड़ीसा बनाम मिश्रा (1965) के वाद में उच्चतम न्यायालय ने कहा - एक विनिश्चय केवल एक प्राधिकार है जो वास्तविक रूप से विनिश्चित है, किसी निर्णय में क्या सार है वह उसका आधार है और न कि प्रत्येक सम्प्रेक्षण जो उसमें निहित है और न ही वह जो उसमें दिये गये विभिन्न सम्प्रेक्षणों से निकलता है।

इतरोक्ति (Obiter dicta):

'किटन के विधिशास्त्र' - किसी न्यायाधीश द्वारा विनिश्चय के क्रम में, इतरोक्ति को विधि के कथन (statements of law) के रूप में वर्णित किया गया है, जो बाद की परिस्थितियों से उत्पन्न होता है किन्तु वे विनिश्चय के लिए आवश्यक नहीं है।

जबकि आधार (ratio) किसी वाद का मूलाधार सिद्धांत या विधिक कारण (reason) है और पूर्वनिर्णय का हृदय है। किसी न्यायाधीश द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत, जो उसके विनिश्चय के लिए आधार

को बनाता है और जो विचाराधीन वाद में प्रयोज्य नहीं है; केवल इतरोक्ति है। ऐसी उक्ति आबद्धकर प्राधिकार नहीं रखती है। वे केवल प्रेरणात्मक हैं।

भारत में, फिर भी, उच्चतम न्यायालय की इतरोक्ति भारत के कई अन्य न्यायालयों पर आबद्धकर है। शर्त यह है कि इतरोक्ति का प्रश्न उच्चतम न्यायालय में उठाया गया हो। इतरोक्ति, फिर भी, सुसंगति धारण करती है क्योंकि वे विधि को आधुनिकीकरण करने में मदद करती है और नई समस्याओं का समाधान करने का सुझाव देती है जो न्यायालय द्वारा अभी तक निर्णित नहीं है।

सामण्ड - महान विधिशास्त्री जैसे ब्लैकबर्न की इतरोक्ति (obiter dicta) प्रायः कमतर न्यायधीशों के विनिश्चय आधार की अपेक्षा अधिक सम्मान प्राप्त करती है।

परिस्थितियां जो आबद्धकर बल को नष्ट करती हैं -

1. वरिष्ठ न्यायालय निराकृत निर्णय को उलट देता है। यह उलटाव तब होता है जब वही विनिश्चय अपील पर किया जाता है और अपीलाय न्यायालय द्वारा उलट दिया जाता है।
2. स्टेट्यूट की अनभिज्ञता।
3. उच्चतर न्यायालय के पूर्व के विनिश्चयों के साथ असंगति।
4. एक समान पद के पूर्व विनिश्चयों के बीच असंगति।
5. मौन पूर्व निर्णय (sub-silentio) या जो पूर्णतः चर्चित नहीं है। *सिसर्ड बनाम बर्थ ऑफ पेरिस लिमिटेड (1936)* के वाद में एक कर्मचारी को पदमुक्त कर दिया गया सदोष पदच्युति के लिए उसे क्षतिपूर्ति दी गई। कर्मचारी ने बैंक खाते पर गारनिशी आदेश के लिए आवेदन किया जो कम्पनी के शासकीय समापक के नाम से था। बहस का विषय केवल दावेदार के ऋण की प्राथमिकता का प्रश्न था और इस बहस को सुने जाने के बाद, कोर्ट ऑफ अपील ने आदेश दिया। इस प्रश्न पर, कि क्या कोई गारनिशी आदेश, बैंक खाते पर जो कम्पनी के शासकीय समापक के नाम से है, उचित रूप से दिया जा सकता है, कोई प्रतिफल नहीं दिया गया।
6. न्यायालय का विनिश्चय समान रूप से विभाजित था। भ्रामिक व्यवहार (practice अपील को रद्द करना है।

विधान (Legislation):

विधान विधि का वह स्रोत है जिसके अन्तर्गत किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा घोषित विधिक नियम सम्मिलित होते हैं। ऐसे सक्षम प्राधिकारी विधानमंडल कहलाते हैं।

सामण्ड - दूसरे अर्थ में, विधान के अन्तर्गत विधानमंडल की इच्छा की प्रत्येक पदावली समाहित होती है चाहे वे नियम बनाने से आदेशित हैं या नहीं। इसमें संसद का प्रत्येक कार्य, इसके उद्देश्यों और प्रभाव को एक साथ दृष्टि में लाये बिना, विधान का कार्य होता है। विधानमंडल अपने कार्यों को नियम बनाने तक सीमित नहीं रखता है, तथापि इसके सभी कार्य विधान के पदों के अन्तर्गत शामिल होते हैं।

विधान के प्रकार -

विधान या तो सर्वोच्च (supreme) या अधीनस्थ (subordinate) होते हैं।

सर्वोच्च विधान (Supreme Legislation) -

सर्वोच्च विधान राज्य की सम्प्रभु शक्ति द्वारा निर्मित होता है। इसलिए राज्य के भीतर कोई अन्य सत्ता किसी भी प्रकार इसे नियन्त्रित कर या रोक नहीं सकती। ब्रिटेन में पार्लियामेन्ट सम्प्रभु है। इसे केवल सर्वोच्च ही नहीं, अपितु विधिक रूप से इसे सर्वशक्तिमान (omnipotent) भी माना जाता है। इस सिद्धान्त का विशिष्ट विवरण डायसी की पुस्तक 'दी लॉ ऑफ दी कान्स्टीट्यूशन्स' में मिल सकता है। उसकी शक्ति पर कोई विधिक सीमा नहीं है। भारतीय संसद भी सर्वोच्च है। यद्यपि

इसकी शक्ति पर कतिपय सांविधानिक अवरोध हैं, किन्तु यह राज्य के भीतर किसी अन्य विधायी सत्ता (legislative authority) के अधीन नहीं है।

अधीनस्थ विधान (Subordinate Legislation) –

अधीनस्थ विधान, जैसा ऊपर बताया गया है, राज्य में सर्वोच्च सत्ता से इतर किसी अन्य सत्ता द्वारा बनाया गया विधान है। यह सर्वोच्च सत्ता द्वारा प्रत्यायोजित (delegated) शक्तियों के अधीन बनाया जाता है। ऐसे विधान का अस्तित्व, विधि-मान्यता और चालू रहना (continuance) सर्वोच्च सत्ता द्वारा मिलता है।

1. उपनिवेशिक विधि (colonial law)
2. कार्यपालिका निर्मित (Executive made law)
3. न्यायिक नियम (Judicial Rules)
4. नगरपालिका विधि (Municipal law)
5. स्वायत्त विधि (Autonomous Law) (विधियों द्वारा, विश्वविद्यालय आदि)

प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष विधान –

प्रत्यक्ष विधान (Direct Legislation) पद के स्ट्रिक्ट कोनोटेशन (strict connotation) में विधान है और इसका तात्पर्य है विधानमंडल द्वारा विधियां बनाना।

अप्रत्यक्ष विधान, दूसरी ओर, विस्तृत अर्थ में विधान है और इसके अन्तर्गत स्टेट्यूट के न्यायिक निर्वचन तथा न्यायाधीशों द्वारा साम्यिक सिद्धांतों के अभ्यावेदन आते हैं। अप्रत्यक्ष विधान के क्षेत्र के अन्तर्गत उपरोक्त वर्णित अधीनस्थ विधान के विभिन्न प्रकार, सिवाय उपनिवेशिक विधान के आते हैं।

विधि के अन्य स्रोतों के ऊपर विधान के लाभ –

सामण्ड - विधिक विकास के अन्य सभी विधियों के ऊपर सर्वोच्च विधान बहुत बड़ा होता कि वर्तमान प्रवृत्ति इसके दावे को अनन्य रूप से स्वीकार करना है और अन्य साधनों को त्याग करना है।

1. निराकारी शक्ति - विधि बना सकती है या नहीं बना सकती है।
   कोर्डोजो - "विधान किसी कैंसर का उन्मूलन कर सकता है, किसी पुरानी गलती (hoary wrong) को ठीक कर सकता है, उस स्थापित बुराई को ठीक कर सकता है जो अशक्त उपचारों को चुनौती देती है।"
2. श्रम विभाजन।
3. घोषणा - लागू करने से पहले औपचारिक रूप से इसे घोषित कर दिया जाता है।
4. भविष्य के वादों के लिए उपबंध।
5. प्रारूप (form), स्पष्टता (clarity) और अभिगम्यता (accessibility)।

सामण्ड - "खान में सोना जबकि स्टेट्यूट सन्य की सिक्का है।"

ऑस्टिन - सफल संहिताकरण की बड़ी कठिनाई संहिताकरण का कोई भी विवेकशील अधिवक्ता इंकार अथवा संदेह नहीं करेगा। इसकी असंभवता की इसके कोई भी शत्रु अभिपुष्टि करने का साहस नहीं करेगा। (its impossibility none of its opponents will venture to affirm)

प्रत्यायोजित विधान - आवश्यकता, रैबसन, पोर्ट, लस्की, जेनिंग्स

इसके विरोध करने वाले हैं - हेवार्ट, सेन्की, किटन, एलेन।

कीथ - प्रत्यायोजित विधान के खतरों का बड़े विस्तार से वर्णन किया है।

नोट - विद्यार्थियों को यह सलाह दी जाती है कि 'प्रत्यायोजित विधान और इसके बचाव' का किसी अच्छी पाठ्यपुस्तक जैसे त्रिपाठी, डायस का अध्ययन करें।

अधिकार और कर्तव्य
Rights and Duties

सामान्य परिभाषा -

इसका सामान्य अर्थ कतिपय क्षेत्र के भीतर अनुज्ञात कार्य (permitted action) का मोटक लिया जाता है।

सामण्ड (Salmond) विधिक अधिकार को इस प्रकार से परिभाषित करते हैं -

'विधिक अधिकार' विधिक न्याय (legal Justice) ही के एक नियम द्वारा मान्य और रक्षित एक हित है - एक ऐसा हित जिसका अतिक्रमण, उस व्यक्ति के प्रति किया गया एक विधिक दोष (wrong) होगा, और जिसका सम्मान करना एक विधिक कर्तव्य है।

'नैतिक' या 'प्राकृतिक अधिकार' से अभिप्रेत है, प्राकृतिक न्याय के नियम द्वारा मान्य और रक्षित एक हित - एक ऐसा हित जिसका अतिक्रमण नैतिक दोष होगा और जिसका सम्मान एक कर्तव्य है।

इहरिंग (Ihering) - 'Spirit of Roman Law' में अधिकार को इस प्रकार से परिभाषित करते हैं "विधिक रूप से रक्षित हित"।

ऑस्टिन (Austin) - अधिकार एक 'क्षमता' (faculty) है जो विहित पक्ष या पक्षकारों में किसी निर्दिष्ट विधि के कारण होती है और जो किसी पक्षकार या पक्षकारों, जो उस पक्षकार या पक्षकारों से भिन्न है जिसमें यह निहित है, के विरुद्ध लागू होती है।

सार (ऑस्टिन के अनुसार) - समतुरूपी कर्तव्य आवश्यक है।

आलोचना - अपूर्ण क्योंकि अपूर्ण अधिकारों के लिए कोई स्थान नहीं है।

"किसी पक्षकार का कोई अधिकार होना केवल तभी कहा जाता है जब कि दूसरा या दूसरे उसके संबंध में कोई कार्य करने या कोई कार्य करने से बचने के लिए विधि द्वारा आबद्ध या बाध्य होते हैं।"

ग्रे - "वह शक्ति जो किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को कोई निश्चित कार्य या कार्यों के करने या विरत रहने के लिए कहती है जहां तक शक्ति समाज से निकलती है जो किसी व्यक्ति या व्यक्तियों पर विधिक कर्तव्य अभ्यारोपित करती है।"

होलैंड (Holland) - विधिक अधिकार का बल और नैतिक अधिकार से भेद करता है। विधिक अधिकारों के बारे में वह कहता है - "यदि उसके पक्ष में बल या नैतिक अधिकार के होने या न होने से स्वतंत्र रूप से राज्य की शक्ति उसे अपनी इच्छा की पूर्ति करने में संरक्षा करेगी, और अन्य लोगों द्वारा ऐसे कार्यों या प्रविरतियों (forbearaces) को बाध्य करेगी जैसी कि उसकी इच्छा की इस प्रकार पूर्ति के लिए आवश्यक हो तबउसे अपनी इच्छा की इस प्रकार पूर्ति करने का विधिक अधिकार होता है।"

एलेन - 'अधिकार ठीक बात ;तपहीजद्ध से उत्पन्न होते हैं। अन्तिम विश्लेषण में दायित्व का सिद्धान्त समुदाय की नैतिक भावना से प्राप्त किया जाना चाहिए।'

विधात्मकवादी (Positivists):

वे प्राकृतिक अधिकारों के विचार के विरोधी हैं और वे इसे एक कल्पना (fiction) या आलंकारिक उक्ति (methaphor) से अधिक नहीं मानते।

सामण्ड के अनुसार, किसी हित को विधिक अधिकार के रूप में मानने के लिए, इसे न केवल विधिक बचाव प्राप्त करना चाहिए बल्कि मान्यता भी प्राप्त करना चाहिए। सामण्ड आगे सम्प्रेक्षित करते हैं - "पशुओं का हित कुछ हद तक विधि द्वारा रक्षित होते हैं जहां तक पशुओं के प्रति क्रूरता आपराधिक अपराध है। किन्तु इस कारण से पशुओं को विधिक अधिकार नहीं होते हैं।" प्रस्तुत

अधिकार वास्तव में संगठित समाज से संबंधित होते हैं, क्योंकि विधि द्वारा मान्य हित स्वतंत्र रूप से उस समाज का है जो अपने जानवरों के कल्याण की इच्छा रखता है।

मानव हितों की रक्षा सामाजिक संगठन का प्राथमिक उद्देश्य होता है, लेकिन विधि ऐसे सभी हितों की रक्षा नहीं करती है।

इहरिंग के अनुसार, इस तरह के वैसे हित, जो विधिक बचाव हासिल किये हैं, को विधिक अधिकार माना जा सकता है।

दूसरे शब्दों में, विधिक अधिकारों का अस्तित्व परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि कुछ मानवीय विरोध ने राज्य का संरक्षण प्राप्त कर लिया है।

ग्रे सम्प्रेक्षित करते हैं कि 'अधिकार स्वतः हित नहीं होते, यह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा हित का उपभोग प्राप्त किया जाता है।'

उदाहरण के लिए, X से 100 रुपया प्राप्त करना मेरा हित है और यदि X विधि द्वारा मुझे भुगतान करने के लिए बाध्य है, मुझे विधिक रूप से संरक्षित हित है और विधिक अधिकार है। परन्तु ग्रे के अनुसार, विधिक अधिकार रुपये का भुगतान नहीं है लेकिन X से रुपये प्राप्त करने की शक्ति है।

ड्यूगिट - 'किसी को अपने कर्तव्य को करने के अलावा कोई अधिकार नहीं है।' वे अधिकारों की संकल्पना को नकार देते हैं।

केल्सन - विधि में अधिकार जैसी कोई संकल्पना नहीं है।

केस - ***स्टेट ऑफ राजस्थान बनाम भारत संघ (1977 SC)*** - एक कठोर अर्थ में, विधिक अधिकार विधिक कर्तव्यों के सह-सबंधी हैं और इस रूप में परिभाषित किये गये हैं कि ये वे हित हैं जिसकी दूसरों पर तत्सम्बन्धी कर्तव्यों को अधिरोपित करने के द्वारा विधि संरक्षा करती हैं किन्तु एक सामान्य अर्थ में 'अधिकार' शब्द का प्रयोग दूसरे की विधिक शक्ति से उन्मुक्ति के अर्थ में होता है, उन्मुक्ति दूसरे की शक्ति से उसी प्रकार छूट है जैसे स्वतंत्रता दूसरे के अधिकार से छूट है। संक्षेप में, उन्मुक्ति 'अ-अधीनता' है।

न्यायिक संबंध (Jural Relations):

वृहत्तर अर्थ में, अधिकार में अन्य विधितः मान्य हित भी, बिना इस विचार के सम्मिलित होते हैं कि सह संबंधित कोई विधिक कर्तव्य है या नहीं है। इस अर्थ के अधिकार के चार भिन्न प्रकार होते हैं। ये हैं -

1. दावे (claims)
2. स्वतंत्रता (liberties)
3. शक्ति (powers)
4. उन्मुक्ति (immunities)

किन्तु स्पष्टता तथा यथार्थता के अर्थ में, यह निर्दिष्ट करना आवश्यक है कि यह शब्द अर्थ में चार अवस्थाओं से गुजरी है।

ये मानव के क्रियाकलापों से संबंधित चार भिन्न विचार इंगित करते हैं -

1. X के संबंध में Y का कर्तव्य द्वारा तुम्हें अवश्य करना चाहिए के रूप में अभिव्यक्त होगा। (कठोर अर्थ में X के विषय में कहा जाता है कि उसका दावा या अधिकार है)
2. Y के संबंध में, कुछ करने की X की स्वतंत्रता X द्वारा मैं ऐसा कर सकता हूं के रूप में अभिव्यक्ति होगी। (X को स्वतंत्रता या विशेषाधिकार है)
3. Y की विधिक स्थिति में परिवर्तन करने का X का दायित्व X द्वारा 'मैं कर सकता' के रूप में अभिव्यक्त होगा (X को शक्ति है)।
4. X की विधिक स्थिति में परिवर्तन करना का Y की अयोग्यता X द्वारा 'तुम नहीं कर सकते हो' के रूप में अभिव्यक्त होगी। (X को छूट थी)

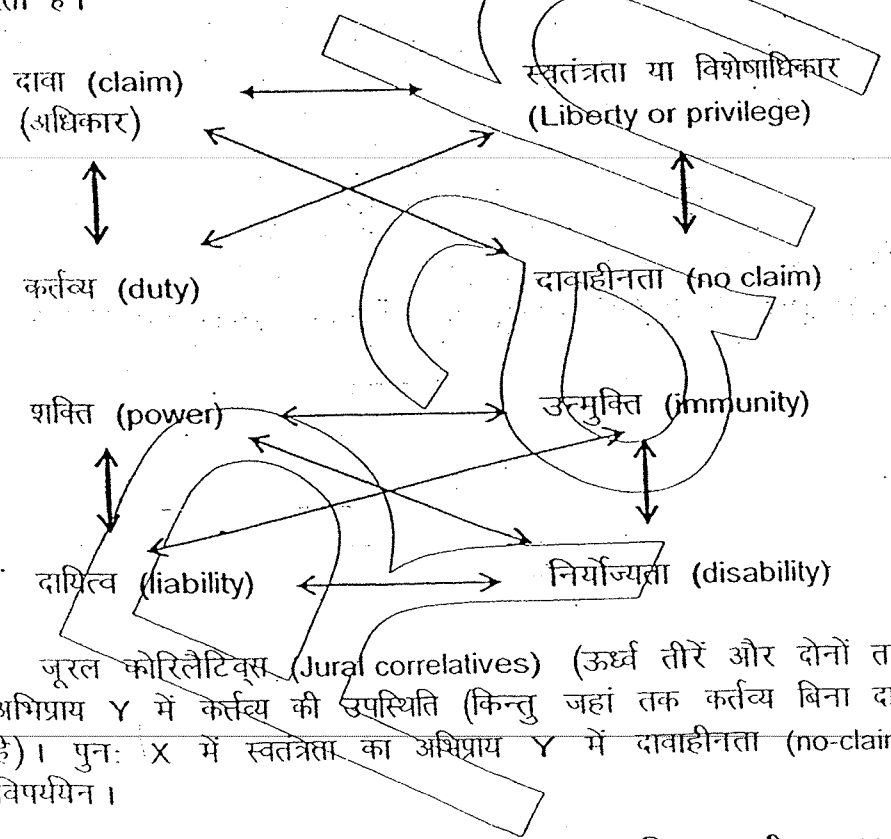
सामण्ड - विधिक अधिकार पद का उसके वर्गगत भाव में अर्थ, 'कोई लाभ या हित' जिसे किसी भी रीति से, किसी व्यक्ति विधि के एक नियम द्वारा प्रदत्त किया जाता है।

अधिकार (Rights)	सह-संबंधित (Correlatives)
1. अधिकार	1. कर्तव्य
2. स्वतंत्रता	2. कोई अधिकार नहीं
3. शक्ति	3. अधीनता/दायित्व
4. उन्मुक्ति	4. निर्योग्यता

होंहफेल्ड ने "जूरल रिलेशन्स" में, अपने Table of Jural Relations को इस प्रकार से विकसित किया है। (कोकरेक ने होंहफेल्ड के सिद्धांत की त्रुटि को बताया। इसको अमरीकन 'रिस्टेटमेन्ट ऑफ दी लॉ' द्वारा अपनाया गया है)

जूरल (Jural)	अधिकार	विशेषाधिकार	शक्ति	उन्मुक्ति
सह-संबंधित (correlatives)	कर्तव्य	कोई अधिकार नहीं	दायित्व	निर्योज्यता
जूरल	अधिकार	विशेषाधिकार	शक्ति	उन्मुक्ति
विरोध (opposites)	कोई अधिकार नहीं	कर्तव्य	निर्योज्यता	दायित्व

जी. एल. विलियम्स द्वारा इस तालिका का निम्न प्रस्तुतीकरण, इसका अच्छी तरह से विश्लेषण करता है।



जूरल कोरिलैटिव्स (Jural correlatives) (ऊर्ध्व तीरें और दोनों तरह से पढ़ें)। X में दावे का अभिप्राय Y में कर्त्तव्य की उपस्थिति (किन्तु जहां तक कर्तव्य बिना दावे का अस्तित्व में हो सकता है)। पुनः X में स्वतंत्रता का अभिप्राय Y में दावाहीनता (no-claim) की उपस्थिति और इसके विपर्ययन।

न्यायिक विलोम (Jural opposites) अथवा न्यायिक अस्वीकार (Jural negation):

X के दावे स्वयं में स्वतंत्रता की उपस्थिति को इंगित करता है। न्यायिक विरोध (Jural contradictories) (क्षैतिज तीरें) X में दावे Y में 'स्वतंत्रता' की अनुपस्थिति को इंगित करती है और इसके विपर्ययन।

निम्न प्रकार से योजना (scheme) पर विस्तृत विवेचन किया जा सकता है -

1. दावा - कर्तव्य संबंध (तुम्हें करना चाहिए) - स्वयं होलफील्ड ने शब्द दावा (claim) के स्थान पर शब्द अधिकार (right) का प्रयोग किया है। सामण्ड ने 'दावे' के स्थान पर 'अधिकार' शब्द का प्रयोग किया है। उसने इस सिद्धांत के बारे में यह विश्वास करते हुए विस्तार से संव्यवहार नहीं किया कि दावे और कर्तव्य की प्रकृति पर्याप्त रूप से स्पष्ट है। कोई दावा सामान्यतः एक संकेत है कि किसी व्यक्ति को किसी निश्चित ढंग से संव्यवहार करना चाहिए।
2. स्वतंत्रता और दावाहीनता (Liberty and no-claim) - होल्फील्ड ने स्वतंत्रता को भिन्न बताया है जिसे किसी व्यक्ति को दावे से कुछ करना है या नहीं करना है।

उदाहरण के लिए, किसी बॉलर की टोपी पहने का X का तथाकथित अधिकार के अन्तर्गत टोपी पहने की स्वतंत्रता तथा दूसरी इसे न पहने की सम्मिलित होती है। (होलफील्ड के विश्लेषण पर आधारित)

1. कर्तव्य और स्वतंत्रता विधिवत् रूप से विलोम होते हैं। उदाहरण के लिए, यदि X को किसी कर्तव्य के अधीन बॉलर की टोपी पहनी है तो इसका अर्थ हो सकता है कि उसके अन्दर इसे न पहने की स्वतंत्रता की अनुपस्थिति है। होलफील्ड का विश्लेषण कर्तव्य का विलोम का अर्थ है। जो कुछ भी कर्तव्य की विषयवस्तु के विरुद्ध उसे करने की कोई स्वतंत्रता नहीं है। उसी तरह से X को किसी कर्तव्य के अधीन टोपी नहीं पहनी है तो यह इसे पहनने की स्वतंत्रता के विरुद्ध होगा।
2. यदि Y को दावा है तो X में कोई कर्तव्य अवश्य होना चाहिए। X में कोई कर्तव्य का अर्थ X में किसी स्वतंत्रता की अनुपस्थिति है। इसलिए Y में कोई दावा X में किसी स्वतंत्रता की अनुपस्थिति को इंगित करता है अर्थात् दावा और कर्तव्य न्यायिक विरोध है।
3. विपरीत रूपों X में किसी स्वतंत्रता की उपस्थिति Y में किसी दावे की अनुपस्थिति का बोध कराती है। होलफील्ड इस शर्त को कोई दावा नहीं मानते हैं। इसलिए, X में स्वतंत्रता यह इंगित करती है कि Y में दावाहीनता की उपस्थिति है अर्थात् स्वतंत्रता और दावाहीनता विधिगत सह-संबंधी है।

दावा और स्वतंत्रता के बीच अन्तर

दावा से सह-संबंध का बोध होता है किन्तु स्वतंत्रता से नहीं। X का किसी बॉलर की टोपी पहने की स्वतंत्रता किसी व्यक्ति में कर्तव्य का सह-संबंधी नहीं है। वास्तव में, Y में हस्तक्षेप न करने का कर्तव्य है। किन्तु न हस्तक्षेप करने का Y का कर्तव्य Y के विरुद्ध X के दावे का सह-संबंधी है कि वह बॉलर की टोपी पहने का X की स्वतंत्रता के साथ हस्तक्षेप नहीं करेगा। और ऐसा करने से विरत न रहने की उसकी दावा दो भिन्न विचार हैं। इस प्रकार, X किसी वैध संविदा में Y के साथ शामिल हो सकता है जहां X, Y को अनुमति देता है कि वह उसे टोपी पहने से विरत करें, किन्तु X कहता है कि वह, ऐसा होने पर भी, इसे पहने का प्रयास करेगा।

स्वतंत्रताओं के लिए यह सामान्य है कि वह दावे से समर्थित हो। परन्तु यह समझना महत्वपूर्ण है कि वे भिन्न और पृथक हैं। स्वतंत्रता परिणित हो सकती है -

1. तथ्य, कि विधायकों और न्यायाधीशों ने अभी तक किसी विषय पर घोषणा नहीं की है और अवशिष्ट का व्यादेशन करता है जो अतिक्रमण करने वाले कर्तव्यों, जैसे एकान्त का अतिक्रमण द्वारा न छुआ हुआ है।
2. न हस्तक्षेप करने का विमर्शित निर्णय।
3. पूर्वविधमान कर्तव्य का विमर्शित उन्मूलन।

शक्ति और दायित्व (मैं कर सकता हूं) (I can):

शक्ति - किसी व्यक्ति में विधायन विधिक स्थिति को बदलने की योग्यता को सूचित करती है चाहे स्वयं का या किसी अन्य का।

दायित्व - शक्ति का सह-संबंधी जो किसी व्यक्ति की स्थिति को सूचित करता है जिसकी विधिक स्थिति को इस तरह से परिवर्तित किया जा सकता है -

दायित्व के बीच भेद करने की आवश्यकता है जो शक्ति का सह-संबंधी है अर्थात् किस उद्देश्य के लिए न्यायिक संबंध को अधीनता 'subjects on' की संज्ञा दी जा सकती है।

दावा और शक्ति के बीच अतर (सामण्ड 'दावे' की जगह 'अधिकार' का प्रयोग करता है)।

दावा सदैव एक चिह्न है। आचरण के स्वरूप के अनुसरण होने के लिए कोई अन्य व्यक्ति की अपेक्षा की जाती है; कोई निश्चित परिणाम उत्पन्न करने के लिए शक्ति एक योग्यता होती है।

कर्तव्य और दायित्व में अन्तर -

यदि X Y से किसी वस्तु को जमा करता है या उधार लेता है, इसे रखने का Y का कर्तव्य तब तक नहीं बनता है जब तक X इसकी भोग नहीं करता है। इस तरह की मांग करने से पहले Y किसी दायित्व के अधीन होगा जिसे कर्तव्य के अधीन रखा जा सकता है।

कर्तव्य और अधीनता के बीच अन्तर (सामण्ड 'दायित्व' के स्थान पर 'अधीनता' का प्रयोग करता है) -

यदि X किसी मोहर (seal) या इस विचार के अन्तर्गत Y से वादा करता है कि वह Y को 5 रुपया देगा यदि अगले दिन वर्षा होगी, तो यह स्पष्ट है कि X का कोई कर्तव्य नहीं है जब तक घटना नहीं घटती है।

उन्मुक्ति - निर्योग्यता संबंध (तुम नहीं कर सकते हो) -

उन्मुक्ति - किसी अन्य की शक्ति से उन्मुक्ति को इंगित करती है, जबकि निर्योग्यता शक्ति की अनुपस्थिति को दर्शित करती है।

अधिकारों का वर्गीकरण, उनके उद्देश्यों के अनुसार -

1. भौतिक पदार्थों पर अधिकार - इस प्रकार, किसी के जमीन, घर, कार, किताबों आदि पर किसी का अधिकार।
2. किसी व्यक्ति स्वयं के प्रति अधिकार।
3. ख्याति का अधिकार (Right of reputation) - किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी दूसरे को अपमान लेख या अपमान वचन से अपमानित करे।
4. अमूर्त सम्पत्ति पर अधिकार - पेटेन्ट अधिकार, कॉपी राइट्स, ट्रेड मार्कस के ऊपर अधिकार।
5. घरेलू संबंधों के बारे में अधिकार - इनके अन्तर्गत वैवाहिक अधिकारों, पैतृक अधिकारों, स्वामी का अपने सेवक के ऊपर अधिकार। अपने वैवाहिक अधिकारों का उल्लंघन जारकर्म (adultery), अपहरण द्वारा घटित हो सकता है।
6. अन्य अधिकारों के संबंध में अधिकार - इस प्रकार, बिक्री की संविदा में क्रेता एक अधिकार। बिक्री की वस्तु पर स्वामित्व का अधिकार प्राप्त करता है।

अधिकारों का वर्गीकरण -

1. पूर्ण और अपूर्ण अधिकार (Perfect and Imperfect Rights):

पूर्ण अधिकार का अर्थ एक ऐसा अधिकार है जिसका कोई सह-संबंधी कर्तव्य है जिसे विधिक रूप से लागू किया जा सकता है। सामान्यतः जब विधि किसी अधिकार को मान्य करती है, तो यह एक उपचार भी विहित करती है और जब उस अधिकार का अतिक्रमण होता है, यह इसको लागू करती है। अपूर्ण अधिकार वह अधिकार है जो यद्यपि विधि द्वारा मान्य होता है किन्तु प्रवर्तनीय नहीं होता है, जैसे कालवर्जित दावे। ऐसे मामले में परिसीमा (limitation) अधिकार को समाप्त नहीं करती। अपितु केवल उपचार को वर्जित करती है। दावा अन्य बातों में विधिमान्य होता है किन्तु इसका

प्रवर्तन नहीं हो सकता। ऐसे मामले 'जहां अधिकार है वहां उपचार भी है' (ubi jus ibi remedium) इस नियम के अपवाद माने जा सकते हैं।

यह पूछा जा सकता है कि ऐसे अधिकारों को मान्य करने का क्या उपयोग है जब उनको प्रवर्तित नहीं किया जा सकता? ऐसे अधिकारों का विभिन्न प्रयोजनों के लिए उपयोग है। यद्यपि एक अपूर्ण अधिकार कार्य के लिए हेतुक (cause for action) नहीं होता, किन्तु यह एक विधिमान्य प्रतिरक्षा है। यदि किसी कालवर्जित ऋण को अदा कर दिया गया है, तो इसे वसूल नहीं किया जा सकता। वसूली के लिए वाद में अपूर्ण अधिकार एक प्रतिरक्षा (defence) के रूप में काम करेगा। अपूर्ण अधिकार के आधार पर किसी ऋण के लिए दी गई कोई प्रतिभूति (security), ऋण के कालवर्जित होने पर भी ऋणदाता द्वारा अपने पास रखी (retained) जा सकती है। कतिपय दशाओं में अपूर्ण अधिकार पूर्ण हो सकता है। उदाहरण के लिए, कालवर्जित ऋण का भागतः भुगतान अथवा अभिस्वीकृति (acknowledgment) ही उस अधिकार को पूर्ण बना देगा। परन्तु यह वहां नहीं होगा जहां अधिकार पूर्णतः समाप्त हो गया है।

2. सकारात्मक और नकारात्मक अधिकार (Positive and Negative Rights):

सकारात्मक और नकारात्मक कर्तव्यों के समान, जिसका हम पहले विवेचन कर चुके हैं; अधिकार भी सकारात्मक और नकारात्मक होते हैं। सकारात्मक अधिकार वह अधिकार है जिसका सह-संबंधी एक सकारात्मक कर्तव्य होता है। नकारात्मक अधिकार वह अधिकार है जिसका सह-संबंधी एक नकारात्मक कर्तव्य होता है। सकारात्मक अधिकार के मामले में अधिकार ग्रहण करने वाला उस व्यक्ति को जिस पर सह-संबंधी कर्तव्य अधिरोपित किया गया है कोई सकारात्मक कार्य करे के लिए बाध्य कर सकता है। नकारात्मक अधिकार का प्रभाव केवल यह है कि इस अधिकार को धारण करने वाले व्यक्ति को हानि नहीं पहुंचायी जायेगी। विधि के लिए सकारात्मक की अपेक्षा नकारात्मक अधिकार को लागू करना अधिक सरल है। इसलिए नकारात्मक अधिकारों की अपेक्षा सकारात्मक अधिकारों की संख्या कम है।

3. सर्वबन्धी और व्यक्तिबन्धी अधिकार (Right in rem and right in personem):

सामण्ड - सर्वबन्धी अधिकार, कभी-कभी वास्तविक अधिकार कहलाता है, यह उस कर्तव्य के अनुरूप होता है जिसे सामान्य अर्थ में व्यक्तियों पर अभ्यारोपित किया जाता है; व्यक्ति संबंधी कोई अधिकार कभी-कभी व्यक्तिगत अधिकार कहलाता है जो उस कर्तव्य के अनुरूप होता है जिसे निश्चित व्यक्तियों पर अभ्यारोपित किया जाता है। सर्वसंबंधी अधिकार स्वतंत्रता से विश्व के विरुद्ध मौजूद होता है, जबकि व्यक्ति संबंधी अधिकार किसी खास व्यक्तियों के विरुद्ध उपलब्ध होता है।

इस प्रकार किसी व्यक्ति का अपमानित न होने का या उस पर हमले नहीं किये जाने का अधिकार ऐसे अधिकार हैं जो संपूर्ण विश्व के विरुद्ध अधिकार होते हैं और वे सर्वसंबंधी अधिकार हैं। पुनः A अपने कार B को एक निश्चित राशि में बेचने से सहमत होता है। A संविदा का भंग करता है, B को A के विरुद्ध नुकसानी के लिए वाद लाने का अधिकार होगा। ये अधिकार दोनों के लिए व्यक्तिगत हैं और ये व्यक्तिबन्धी कहलाते हैं।

सामान्यतः सर्वबन्धी अधिकार नकारात्मक अधिकार होते हैं जबकि व्यक्तिबन्धी अधिकार सकारात्मक अधिकार होते हैं।

4. स्ववस्तु में अधिकार और परवस्तु में अधिकार (Rights in re propria and rights in re aliena):

अधिकारों का यह वर्गीकरण- कम या अधिक साम्पत्तिक अधिकारों का वर्गीकरण है। स्ववस्तु (reproria) में अधिकारों का अर्थ है किसी व्यक्ति का अपनी वस्तुओं में अधिकार, परवस्तु (re aliena) में अधिकार दूसरे की वस्तुओं में अधिकार हैं। बाद वाले को विल्लंगम (encumbrances) भी कहा जाता है। सामण्ड परवस्तु में अधिकार या विल्लंगम की परिभाषा इस रूप में करता है कि यह एक ऐसा अधिकार है जो उसी विषय के बारे में किसी अन्य व्यक्ति के होने वाले अधिक

सामान्य अधिकारों को सीमित करता है या उनको कम करता है और अन्य दूसरे स्ववस्तु में अधिकार होते हैं। परवस्तु में अधिकार या विल्लंगम तब उत्पन्न होते हैं जब किसी व्यक्ति का अपनी सम्पत्ति में अधिकार उसी सम्पत्ति में किसी दूसरे व्यक्ति के अधिकार के अधीन हो जाता है जैसे किसी दूसरे की भूमि पर होकर मार्ग का अधिकार। इस प्रकार अधीन हुआ अधिकार 'अधिसेवी' (servient) कहा जाता है और इसे सीमित करने वाला अधिकार अधिष्ठायी (dominant) कहा जाता है। विल्लंगमों के मुख्य वर्ग हैं - पट्टे (leases), अधिसेविताएं (servitudes), प्रतिभूतियां (securities) और न्यास। विल्लंगमों का प्राचीन वर्गीकरण आधुनिक काल में पुरानी बात (outdated) हो गई है। वाणिज्यिक विधि के विकास के कारण स्थिति बहुत जटिल हो गई है और एक नया वर्गीकरण आवश्यक है।

5. **साम्पत्तिक और व्यक्तिगत अधिकार (Proprietary and Personal Rights):**

साम्पत्तिक अधिकार का अर्थ किसी व्यक्ति का अपनी सम्पत्ति के संबंध में अधिकार है। व्यक्तिगत अधिकार हैसियत (status) से संबंधित अधिकार है और वे जो संविदा से उत्पन्न होते हैं। किसी व्यक्ति के साम्पत्तिक अधिकारों का जोड़ (aggregate) उसकी संपत्ति या सम्पदा (estate) होती है। किसी मनुष्य के व्यक्तिगत अधिकारों का समुच्चय उनकी हैसियत होती है। पैटन के अनुसार, 'व्यक्तिगत अधिकारों को इस रूप में परिभाषित किया जा सकता है कि वे केवल अवशिष्टीय (residuary) अधिकार हैं जो कि साम्पत्तिक अधिकारों को घटाने के बाद बचते हैं।'

6. **सामान्य अधिकार और मौलिक अधिकार (Ordinary rights and Fundamental rights):**

भारत के संविधान ने कुछ निश्चित अधिकारों को सुनिश्चित किया जिसे मौलिक अधिकार कहते हैं। जबकि सामान्य अधिकारि में विधायी प्रक्रिया द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है या उसे निराकृत किया जा सकता है।

7. **विधिक और साम्यागत अधिकार (Legal and Equitable Rights):**

अधिकारों का यह विभाजन, इंग्लैण्ड में गत शताब्दी तक, न्याय के प्रशासन के लिए दो प्रकार के न्यायालयों के अस्तित्व के कारण था। वे दो प्रकार के न्यायालय कामन लॉ कोर्ट्स और चांसरी कोर्ट्स थे। कामन लॉ न्यायालयों द्वारा मान्य और प्रवृत्त किये जाने वाले अधिकतर 'विधिक अधिकार' के रूप में जाने जाते थे और चांसरी न्यायालयों द्वारा मान्य और प्रवृत्त किये जाने वाले अधिकार 'साम्यागत अधिकार' कहे जाते थे।

यद्यपि जुडिकेचर एक्ट, 1873 के पारित होने के पश्चात् पृथक् चांसरी न्यायालय समाप्त कर दिये गये हैं और अब वह हाई कोर्ट का एक डिवीजन है (चांसरी डिवीजन) किन्तु विधिक और साम्यागत अधिकारों के बीच भेद बना हुआ है। दोनों प्रकार के अधिकार सभी न्यायालयों द्वारा मान्य किये गये हैं, किन्तु वे अपने व्यावहारिक प्रभाव, अपने निर्मित होने की रीति और व्ययन में अन्तर रखते हैं। एक विधिक बन्धक (mortgage) और एक साम्यागत बन्धक की औपचारिकताओं (formalities) में अन्तर है। विधिक अधिकारों की अपेक्षा साम्यागत अधिकारों का अधिक अनिश्चित अस्तित्व होता है। वे दशाएं, जिनमें कोई साम्यागत अधिकार किसी विधिक अधिकार पर अभिभावी होगा, साम्या की पुस्तकों में प्राप्त होगी।

भारतीय स्थिति - भारत में दोनों विधिक और साम्यागत अधिकारिता न्यायालयों में सन्निहित हैं जो न्याय, साम्य और सद्अन्तःकरण के अनुसार कार्य करती हैं। भारत में अधिकारों का 'विधिक और साम्यागत' जैसा कोई वर्गीकरण नहीं है।

8. **मूल और समनुषंगिक अधिकार (Principal and Accessory Rights):**

मूल अधिकार मुख्य या प्राथमिक अधिकार है जो किसी व्यक्ति में समाविष्ट होता है। अनुपूरक अधिकार ऐसा अधिकार है जो मूल अधिकार के अनुलग्नक है और वह समनुषंगिक अधिकार कहलाता है।

इस प्रकार, सामनुषंगिक अधिकार एक प्रकार का अनुपूरक अधिकार है जो मूल अधिकार से जुड़ा हुआ है या मूल अधिकार से निकलता है। विधिक सूक्ति सहायक प्रधान का अनुसरण करता है (accessorium sequitur principal) है। इस प्रकार, किसी पट्टे का किराया और प्रसंविदाएं संपत्ति के स्वामी के स्वामित्व के सहायक होती हैं।

9. प्राथमिक और द्वितीयक कर्तव्य (Primary and Secondary Duties):

प्राथमिक कर्तव्य वह कर्तव्य है जो स्वत: और किसी दूसरे कर्तव्य से स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में होता है। किसी व्यक्ति को चोट न पहुंचाने का कर्तव्य एक प्राथमिक कर्तव्य है। द्वितीयक कर्तव्य वह कर्तव्य है जिसका प्रयोजन केवल किसी अन्य कर्तव्य को प्रवर्तित करता है। यदि एक व्यक्ति किसी दूसरे को क्षति पहुंचाता है, तो पहले वाला व्यक्ति बाद वाले व्यक्ति को नुकसानी देने के कर्तव्य के अधीन है। यह एक द्वितीयक कर्तव्य है। यह प्रकट है कि क्षति न पहुंचाने का कर्तव्य प्राथमिक कर्तव्य है। जब इस कर्तव्य को भंग किया जाता है, तब नुकसानी देने का द्वितीयक कर्तव्य उत्पन्न होता है।

प्राथमिक अधिकार - सर्वबन्धी और व्यक्तिबन्धी अधिकार
द्वितीयक अधिकार - व्यक्तिबन्धी अधिकार

10. पूर्वगामी अधिकार (प्राथमिक/मूल) और उपचारी अधिकार (द्वितीय/सहायक) -

पोलक कहते हैं कि पूर्वगामी अधिकार सारभूत (substantive) अधिकार है और उपचारी अधिकार 'प्रक्रिया संबंधी' (adjective) अधिकार है। प्राथमिक और द्वितीय अधिकारों की तरह, विधि न केवल बाध्यता है बल्कि सृजनात्मक भी है।

11. निहित/समाश्रित अधिकार (अ-अंन्तरणीय और अ-दायहित) -

निहित अधिकार - पूर्व से ही पूर्ण किया हुआ है और इसे लागू किया जा सकता है। समाश्रित अधिकार अभी तक लागू करने योग्य नहीं हुये है और वे कुछ ऐसी शर्तों पर निर्भर हैं जिन्हें पूरा किया जाना हैं। एक बार जब शर्तें पूरी हो जाती हैं तब वे निहित अधिकार हो जाती हैं।

कर्तव्य (Duty):

कर्तव्य एक ऐसा कृत्य है जिसे करने के लिए एक व्यक्ति बाध्य है। जब विधिक किसी कृत्य को कर्तव्य के रूप में मान्यता दे देती है तब पालन का प्रवर्तन हो जाता है। सामण्ड के अनुसार, एक कर्तव्य एक अनिवार्य कृत्य है। यह एक कृत्य है, जिसका विपरीत दोष (wrong) होगा। कर्तव्य और दोष सह-संबंधी है। दोष का कारित होना कर्तव्य का उल्लंघन है और कर्तव्य का पालन दोष से बचाव है। प्रो. फूलर ने विनियम व्यवहार के लिए सामान्य शर्तें बतायी हैं। एक कर्तव्य हो सकता है -

1. सामान्य
2. जारी किया गया (promulgated)
3. भावी (prospective)
4. बोधगम्य (intelligible)
5. अपने आप में संगत (consistent in itself)
6. पूर्ति करने में सामर्थ्य (capable of fulfilment)
7. समय के साथ निरंतर स्थिर (constant through time)
8. पदीय कार्य के साथ सर्वांगसम (congruent with official act)

ये आठों बिन्दुएं विधि की आन्तरिक नैतिकता (inner morality) कहलाते हैं।

कर्तव्य का स्वरूप (Structure of duty):

न्यायालय कर्तव्य के विभिन्न संकल्पनाओं का प्रयोग करता है ताकि विभिन्न परिस्थितियों में न्याय किया जा सके। व्यवहार मुख्यत: कर्तव्यों के द्वारा विनियमित होता है। उनके बारे में व्यवहार के अतिरिक्त अन्य माध्यम से पता लगाना असंभव है। ऑस्टिन, ने कर्तव्यों के एक संवर्ग की मान्यता

दी जिसे उसने आत्मसम्मानित कर्तव्य कहा और जो, उनके अनुसार, उन व्यक्तियों के हित में अभ्यारोपित किये जाते हैं जो उनसे बाध्य हैं।

एलेन यह दिखाया कि आपराधिक विधि के सभी समुत्थान (concern) और अन्तर्ग्रस्त व्यवहार समुदाय या इसके कुछ भाग पर प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार से हो सकता है -

1. कर्तव्य जो केवल व्यवहार का विचार करता है।
2. कर्तव्य जो व्यवहार का विचार निर्दिष्ट परिस्थितियों के संबंध में करता है।

एलेन - कर्तव्य किसी चीज द्वारा नहीं लागू किया जा सकता है किन्तु व्यक्तिगत अन्तःकरण द्वारा लागू किया जा सकता है।

ऑस्टिन - जबकि प्रत्येक अधिकार सापेक्ष है और उसका सह-संबंधी कर्तव्य है। प्रत्येक कर्तव्य का सह-संबंधी अधिकार हो, ऐसा आवश्यक नहीं है।

ऑस्टिन कर्तव्य के चार वर्गों का वर्णन करता है, जो निरपेक्ष होते हैं अर्थात् किसी अधिकार से सह-सम्बद्ध नहीं करते हैं।

1. आत्मपरक कर्तव्य (उदाहरण के लिए आत्महत्या नहीं करने का कर्तव्य या नशे में धुत्त होना)
2. लोक या व्यक्ति के प्रति कर्तव्य -(उपताप नहीं करना)
3. व्यक्ति के संबंध में कर्तव्य नहीं (ईश्वर)

एलेन द्वारा उपरोक्त दृष्टिकोण का समर्थन किया जाता है -

"निस्संदेह राज्य को, कठोर अर्थ में, निश्चित अधिकार और हित हो सकते हैं, उन व्यक्तिगत नागरिकों का समाज - सजा देने का अधिकार या समादेश देने का अधिकार या सम्प्रभुता का अधिकार से भिन्न तरह के अधिकार। यह संविदाओं और अन्य संबंधों में शामिल हो सकता है जो साधारण विधिक अर्थ में, अधिकारों और कर्तव्यों को जन्म देते हैं।"

एलेन - "उदाहरण के लिए एक राज्य बच्चों को स्कूल जाने के लिए या टीका लगाने के लिए बाध्य करता है, कुछ निश्चित औषधियों की बिक्री करने से रोकता है या जानवरों का आयात निषेध करता है जिसका पहले संगरोध नहीं किया गया है।"

सामण्ड और पोलक, फिर भी, उपरोक्त सिद्धांत से असहमत हैं और उनका मत है कि सभी कर्तव्य सापेक्ष होते हैं और कोई निरपेक्ष (absolute) कर्तव्य नहीं हो सकता है, क्योंकि अन्य में कोई अधिकार अवश्य होना चाहिए जब कोई किसी कर्तव्य के अधीन है।

ऑस्टिन तर्क देते हैं कि राज्य की ओर भोक्ता का कर्तव्य निरपेक्ष होता है, यह कहते हुये कि कोई भी व्यक्ति स्वयं के ऊपर अधिकार प्रदत्त नहीं कर सकता है। इसलिए, प्रत्येक विधिक अधिकार तीन पक्षकारों की अपेक्षा करता है, जैसे - अन्तर्निहित (inherence) का व्यक्ति। प्रभावित व्यक्ति (incidence) और किसी सम्प्रभु सरकार जो विधि को निर्धारित करती है जो अधिकार और कर्तव्य प्रदत्त करती है या अभ्यारोपित करती है। इस प्रकार, सम्प्रभु के लिए विधिक अधिकार होता है; इसे प्रदत्त करने का अन्य सम्प्रभु का अस्तित्व आवश्यक हो जायेगा। वह संभव नहीं है।

ग्रे - सम्प्रभु को, स्वयं के लिए विधिक अधिकार उत्पन्न करने का असीमित शक्ति है किन्तु केवल वही विधिक अधिकार जो हर समय राज्य के पास हैं, वे हित हैं जो तब विधि द्वारा संरक्षित किये जाते हैं अर्थात् निमयों द्वारा राज्य के न्यायिक अंग के अनुसार।

हिबर्ट - निरपेक्ष और सह-संबंधी कर्तव्यों के बीच अन्तर तार्किक और सुविधाजनक है क्योंकि यह शक्ति और अधिकार के बीच अन्तर के साथ सामंजस्य बैठाता है, क्योंकि राज्य अपनी ही शक्ति के द्वारा निरपेक्ष कर्तव्यों के उल्लंघन का उपचार कर सकता है, जबकि वह व्यक्ति जिसमें विधिक अधिकार निहित है अपने ही शक्ति द्वारा, अपने अधिकारों की रक्षा के लिए सम्प्रभु से अपील करते हुए उल्लंघन का उपचार नहीं कर सकता है, जो कि प्रतितोष (redressal) से बिल्कुल भिन्न है।

इस प्रकार हिबर्ट कहता है कि राज्य के अधिकारों को स्वीकार करना वास्तव में शक्ति के साथ अधिकार को भ्रमित करता है।

मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ (1980) के वाद में उच्चतम न्यायालय ने धारित किया कि ऐसा नियम हो सकता है जो व्यक्तिगत प्राधिकार पर दायित्व अभ्यारोपित करता है, और तब भी इसे विधि के न्यायालय में लागू नहीं किया जा सकता है और इसलिये यह दूसरे व्यक्ति में तदनुरूपी प्रयोज्य अधिकार को जन्म नहीं दे सकता है।

सकारात्मक और नकारात्मक कर्तव्य (Positive and Negative Duties):

सकारात्मक कर्तव्य उस व्यक्ति द्वारा किसी कार्य को बताता है (implies) जिस पर यह अधिरोपित है। नकारात्मक कर्तव्य उस व्यक्ति द्वारा प्रविरिति (forbearance) बताता है जिस पर यह अधिरोपित है।

अनुशास्ति (Sanction):

बहुत से प्राधिकार तर्क देते हैं कि किसी कर्तव्य को विधिक के रूप में भेद किया जा सकता है जब कभी कोई अनुशास्ति अपने भंग होने से जुड़ती है। इस दृष्टिकोण का उपसिद्धांत यह है कि अनुशास्ति की उपस्थिति विधिक कर्तव्य की कसौटी है। शब्द सैंक्शन (sanction) के भिन्न अर्थ हैं।

पोलक के अनुसार, अवज्ञा के नियम परिणाम (the appointed consequence of disobedience) - केली ने जोर देकर कहा कि अनुशास्ति आचरण के निश्चित स्वरूप की दशा में लागू होती है जिसका पालन नहीं किया गया है,। इसलिए, अनुशास्ति वहीं है जिसे विधि निर्धारित करती है। उसने अनुशास्ति के निर्धारण (prescription) को आचरण के प्राथमिक मानों एवं स्वरूपों के रूप में व्यहृत किया है जिसका द्वितीयक के रूप में अनुशास्ति से बचने के लिए पालन किया जाना चाहिए।

अधिकारों के सिद्धांत -

इच्छा सिद्धांत (Will Theory):

- विधि का प्रयोजन व्यक्ति को अपने को अभिव्यक्त करने (self-expression) या अपने हक के दावे (self-assertion) के साधनों को प्रदान करना है।
- ऑस्टिन और हालैंड इस विचारधारा से संबंध रखते हैं।
- पोलाक और विनोग्रैडोफ भी इस विचारधारा से संबंध रखते हैं।
- प्राकृतिकवादियों और तत्वमीमांसीय विधिशास्त्री इसका समर्थन करते हैं।

लॉक - अ-अभ्यासंक्राम्य (inalienable) अधिकारों में विश्वास करता है - व्यक्ति के जीवन के कतिपय क्षेत्रों में राज्य हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

होम्स - "कतिपय प्राकृतिक शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अनुज्ञा (permission) और कतिपय शर्तों पर लोक-बल की सहायता से संरक्षा, प्रत्यास्थापना (restitution) या प्रतिकर प्राप्त करने के अलावा और कुछ नहीं है।"

- कान्ट, हिमेल और ह्यूम भी इसको समर्थन करते हैं।
- इच्छा सिद्धांत के सबसे बड़े समर्थक जर्मनी तथा ऐतिहासिक विचारधारा रहा है।
- पुश्तां - "किसी वस्तु पर शक्ति है, जो इस अधिकार के जरिये उस व्यक्ति की इच्छा के अधीन की जाती है जो उस अधिकार का उपभोगकर्ता है।"

आलोचना -

नकारात्मक -

1. ड्यूगिट् - विधि का आधार 'सामाजिक समेकता' (social solidarity) का वस्तुनिष्ठ (objective) तथ्य है और व्यक्तिनिष्ठ (subjective) इच्छा नहीं।
2. वे 'क्या है और कहां होना चाहिए' के बीच भेद नहीं करते।

सकारात्मक -

1. विधि का प्रयोजन - व्यक्तिगत इच्छा और सामाजिक इच्छा के बीच संतुलन।
2. विधि शून्य में से अधिकारों का निर्माण नहीं करती,-अपितु एक बड़ी सीमा तक यह व्यक्तियों की इच्छा से निकालती और चुनती है।

विधिक व्यक्तित्व
(Juristic personality)

विधिक व्यक्तित्व (Juristic personality) - जिस तरह से सम्प्रभु के भोक्ता होने चाहिये या राज्य के लिए उसका नागरिक होना चाहिए। उसी तरह से प्रत्येक विधिक प्रणाली में व्यक्तियों को अवश्य होना चाहिए जो इनकी विधियों के अधीन हैं। यदि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को विधिक व्यक्तित्व है तो इसका आशय है कि वह किसी विशेष विधिक प्रणाली की विधि के अधीन है।

व्यक्ति (Person) - आये दिन के जीवन में, जब कोई किसी व्यक्ति के विषय में बात करता है, तो उसका अभिप्राय है एक मानव-प्राणी, किन्तु विधिक पदावली में, इस शब्द के भिन्न अर्थ हैं। शब्द 'परसन' की व्युत्पत्ति यूनानी शब्द परसोना से हुई है जिसका अर्थ है आवाज ध्वनित होना, प्राचीन काल में परसोना का अर्थ अभिनेता का मुखौटा जिसमें से उसकी आवाज दर्शकों के पास आती थी।

सामंड - "जहां तक विधिक सिद्धांत का संबंध है, एक व्यक्ति मानव प्राणी है जिसे विधि अधिकारों और कर्तव्यों का पालन करने में सामर्थ्य मानती है। कोई भी प्राणी इस तरह से सामर्थ्य है, व्यक्ति है, चाहे मानव प्राणी हो या नहीं और कोई भी वैसा प्राणी नहीं जो इस प्रकार से करने में सामर्थ्य नहीं है व्यक्ति है चाहे भले ही वह कोई व्यक्ति हो"। भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत शब्द व्यक्ति के अन्तर्गत कोई कम्पनी या संघ या व्यक्तियों का निकाय सम्मिलित होता है चाहे निगमित हो या नहीं।

वे व्यक्ति जो विधि के अधीन हैं -

1. प्राकृतिक व्यक्ति (Natural Persons) - व्यक्ति (individual) सामाजिक इकाइ है जो विधि और समाज दोनों के पूर्व से ही है। जबकि विधियां व्यक्ति द्वारा बनायी जाती हैं और व्यक्तियों के बीच न्यायिक संबंध के लिए। इसमें आश्चर्य नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति का न्यायिक संबंध विधिक प्रयोजनों के लिए पृथक और सबसे महत्वपूर्ण सत्ताओं में से एक के रूप में आया है। इस रूप में प्राकृतिक और विधिक व्यक्तियों के बीच कोई भेद नहीं है।
2. विधिक व्यक्ति (Juristic persons) - प्रत्येक मानव प्राणी को विधिक व्यक्तित्व देने से भिन्न, विधिक व्यक्तित्व की संकल्पना कुछ कतिपय सत्ताओं के लिए लागू की जाती हैं जिसे यह विधिक अधिकारों का प्रयोग करने तथा विधिक दायित्वों को अपने ऊपर लेने के सामर्थ्य मानती है।

विधिक व्यक्ति के कई भिन्न रूप हैं -

निगम (Corporation) - वह सत्ता जिसे निगमित विधिक दायित्व दिया गया है, उसे निगम की संज्ञा दी गई है। ऐसे निगम को विधिक दायित्व होता है जो पूर्णतः व्यक्तियों से भिन्न होता है जो उन्हें निर्मित करते हैं और उनका एक जीवन है जो उनके व्यक्ति सदस्यों के मरने पर भी चलता रहेगा। निगमों का सृजन और उनका अवसान विधि के प्रवर्तन द्वारा किया जाता है।

निगम के प्रकार -

1. एकल निगम (Corporation sole):

एकल निगम कोई मान्यताप्राप्त विभागीय व्यक्ति है जो एक मानव व्यक्ति द्वारा भरा जाता है जिसे समय-समय पर प्रतिस्थापित किया जाता है। उदाहरण के लिए क्राउन, पोस्टमास्टर, जेनेरल, अटॉर्नी जेनेरल, एडवोकेट जेनेरल। एकल नियम का मुख्य प्रयोजन कार्यालय की निरंतरता (continuity) सुनिश्चित करना है। जैसा कि सामण्ड ने सम्प्रेक्षित किया है, एकल नियम की स्थिति में, उपरोक्त नामों के प्रत्येक के अधीन दो व्यक्ति रहते हैं। एक मानव प्राणी है होता है जो तत्समय (वह जिसे विधि समझ सकती है) प्रशासन करता है। दूसरा व्यक्ति कार्यालय है जो कभी भी नष्ट नहीं होता या रिक्त नहीं होता।

2. समष्टि नियम -

समष्टि नियम के अन्तर्गत कई मानव प्राणी आते हैं। इसका अस्तित्व होता है, और यह अपने सदस्यों के अस्तित्व से स्वतंत्र होता है।

सामण्ड - समष्टि नियम सह-अस्तित्ववादी (co-existing) व्यक्तियों का एक निगमित समूह होता है, और एकल निगम क्रमिक (successive) व्यक्तियों की निगमित श्रृंखला (incorporated) है।

3. विधि व्यक्तियों की इच्छाओं का सम्मान करती है, किन्तु उनकी उस सीमा तक कांट-छांट कर देती है जहां तक वे अन्य व्यक्तियों की इच्छाओं के विरोध में हैं।
4. पैटन - "विधिक अधिकार की सामान्य संकल्पना में 'इच्छा' एक अत्यावश्यक तत्व है; किन्तु यही एकमात्र तत्व नहीं है।"

हित सिद्धांत (Interest Theory):

इहरिंग (जर्मन) इस सिद्धांत के प्रवर्तक -
- राज्य समुदाय के विभिन्न हितों में से चुनता है।
- सामण्ड - इसके न्यायिक रूप से लागू किए जाने (enforceability) को अधिकार के एक आवश्यक तत्व के रूप में जोड़ देते हैं।
- सिद्धांत का समर्थन करता है। बिना इच्छा के अधिकार उदाहरण के लिए, पागल, शिशु, निगम।

निष्कर्ष -
- दोनों सिद्धांत एक दूसरे के इतने विरोधी नहीं है जितना कि वे प्रतीत होते हैं - मानव-इच्छा सदैव कतिपय लक्ष्यों की ओर निर्दिष्ट होती है।
- एलेन - "मुझे विधिक अधिकार का सार न तो स्वयं में विधित: गारंटीकृत (guaranteed) शक्ति न ही स्वयं में विधित: संरक्षित हित प्रतीत होता है अपितु एक हित की पूर्ति के लिए विधित: गारंटीकृत शक्ति प्रतीत होती है।"

सिद्धांतों पर सामान्य टिप्पणियां -

अधिकार के बारे में सिद्धान्त अधिकार की संकपना के सैद्धान्तिक विश्लेषण पर इतने आधारित नहीं हैं जितने कि राज्य और विधि के सिद्धान्तों पर हैं।

ड्यूगिट का सिद्धांत - सामाजिक समेकता - अधिकार के एकदलीय शासन (totalitarian) दृष्टिकोण - राज्य ही सब कुछ है और एक मात्र वास्तविकता है।

उदाहरण के लिए, (यू. एस. एस. आर., चीन आदि) - इन राज्यों में केवल नाममात्र के अधिकार हैं।

अधिकारों के दो अन्य तत्व -

1. राज्य द्वारा मान्यता
2. राज्य द्वारा संरक्षण (इस बिन्दु पर विरोधाभास) - यह नैतिक अधिकार से विधिक अधिकार में भेद करता है। फिर भी, संरक्षण तत्व पूर्ण नहीं होता है।

1. अपूर्ण अधिकार, उदाहरण के लिए, समय अवधि बाधित ऋण।
2. ऐसे मामले जहां अधिकारों का प्रवर्तन नहीं होता है किन्तु नुकसानी वहां मिलती है।
3. लागू किये जाने के यंत्र की कमी, उदाहरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय विधि।

नोट -
1. लागू किए जाने को विधि का सार बनाना विषय के संबंध में बहुत संकुचित दृष्टिकोण अपनाना है।
2. आधुनिक काल में, लागू किया जाना, आवश्यक तत्व नहीं है।

महत्वपूर्ण बिन्दु -

विधिक अधिकार के तत्व -

1. कर्ता
2. कार्य या प्रविरति (act forbearance)
3. अधिकार का विषय
4. प्रभावित व्यक्ति (person of incidence)

उपरोक्त चारों तत्व पैटन और होलैण्ड ने दिये हैं। सामण्ड ने एक पांचवां तत्व भी दिया है अर्थात् 'हक' (title)।

समष्टि नियम को उसके सृजन की रीति के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है -
1. चार्टर द्वारा 2. स्टेट्यूट द्वारा 3. निगम जो कंपनी अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत है।

चार्टर्ड कंपनीज़ - राजा और रानी प्रदत्त विशेष चार्टर के अधीन निगमित।

स्टेट्यूटरी कंपनीज़ - विधानमंडल के विशेष अधिनियम द्वारा सृजित, जैसे, आर.बी.आई, एस.बी. आई., एल.आई.सी।

पंजीकृत कंपनीज़ - कंपनीज़ एक्ट के अधीन पंजीकृत वे हो सकते हैं -

1. **शेयर** द्वारा परिसीमित - सदस्य का दायित्व (liability of member is limited by memorandum to amount unpaid on shares)
2. **गारंटी** द्वारा परिसीमित कंपनी - सदस्य का दायित्व ज्ञापन द्वारा उस मात्रा तक परिसीमित है जहां सदस्यगण कंपनी की संपत्ति में परिदान करते हैं यदि यह परिसमापन की स्थिति में हो।
3. **अपरिसीमित कंपनी** - सदस्यों का दायित्व अपरिसीमित होता है।

न्यायालय निगम को इसके सदस्यों से भिन्न एक अस्तित्व के रूप में संव्यवहार करता है *(सालोमन बनाम सालोमन)*। आज निगमन का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य सीमित दायित्वों के साथ वाणिज्य और उद्योग की भारी सहायता करनी है।

निगमित व्यक्तित्व को कल्पितार्थ सिद्धांत को व्यक्तियों के सामूहिक और परिवर्तित समूह पर व्यक्तित्व के स्वभाव और गुण को प्रदान करने के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है।

निगम का कार्य और दायित्व -

निगम एक विधिक व्यक्ति है जो ऐजेंट को अपनी ओर से कार्य करने के लिए प्राधिकार देने में सामर्थ्य नहीं होता है। इसलिए एजेंटों का प्राधिकार और निगम का प्रतिनिधित्व प्रमुख की इच्छा द्वारा प्रदत्त, परिसीमित और निर्धारित नहीं किया जाता है बल्कि इनमें से किसी के द्वारा -

1. कुछ मानव प्राणियों की इच्छा से जिसकी इस उद्देश्य के लिए विधि में निगम के साथ पहचान की गयी है।
2. विधि स्वयं द्वारा।

निगमित कंपनियों के संबंध में, विशेष स्टेट्यूट द्वारा महत्वपूर्ण नियम यह है कि उनकी शक्ति विधि द्वारा निर्बंधित है। भारत में, हिन्दू की मूर्ति का वही स्थान है जैसा कि किसी नियम का है। इसी प्रकार से मस्जिद भी एक नियम है। विधिक व्यक्ति होते हैं जो सम्पत्ति रखने में सामर्थ्य हैं। किसी मूर्ति के विरुद्ध वाद लाया जा सकता है यदि इसके प्रबन्धक और न्यासी द्वारा कोई अपकृत्य किया जाता है।

पोलट्रन बनाम लंदन एवं एस. डबलू. रेल कंपनी के वाद में यह धारित किया गया कि रेल कंपनी उत्तरदायी नहीं है, अवैध गिरफ्तारी के लिए उपचार स्टेशन मास्टर के विरुद्ध होगा।

राज्य एक निगम के रूप में -

भारत में, भारतीय संविधान का अनुच्छेद 300 भारत संघ का विधिक व्यक्तित्व सृजित करता है।

ब्राउन - राज्य को व्यक्तित्व को स्वीकार करने से निषिद्ध करना, या तो नये विचारों की निर्धारिता से या हमारे स्वभाव के रूढ़िवाद से। हम राजा को विशेषाधिकार और दायित्व देने की विधि से प्रेरित हैं, जिसके बारे में कोई मान नहीं सकता कि वह वास्तव में उसी का है। विधिक सिद्धांत का ज्ञाता, तथापि हमारे दरवाजे को तेजी से खटखटाता है और किसी दिन हम यह पाने के लिए जगेंगे कि हम लोग नींद में बात करते हैं - राज्य को विधिक मान्यता, सामूहिक वास्तविक व्यक्ति के रूप में सामान्यतः समय की बात है।

अनिगमित संघ -

विधि में इनके सदस्यों का कुल संख्य के अलावा और कुछ नहीं है। उदाहरण के लिए, छोटा सामाजिक क्लब, व्यवसाय संघ।

कुछ सत्ता जो बीच में पड़े रहते हैं - साझेदारी और पंजीकृत व्यापार संघ।

साझेदारी विधिक व्यक्ति नहीं है तथापि यह कतिपय ढंग से किसी एक से मेल खाती है, यह वाद ला सकती है और इसके अपने पर वाद लाया जा सकता है।

व्यापार संघ - किसी अपकृत्यात्मक कार्य के संबंध में किसी व्यापार संघ के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती है। फिर भी, उन्मुक्ति का अवैध हड़ताल या तलाबन्दी तक विस्तार नहीं हो सकता है।

दोहरा सामर्थ्य और दोहरा व्यक्तित्व -

आंग्ल विधि के विभिन्न सामर्थ्यों को मान्यता देती है जिसमें कोई व्यक्ति कार्य कर सकता है। दोहरा सामर्थ्य का तात्पर्य दोहरा व्यक्तित्व नहीं है।

मृत व्यक्ति का विधिक हैसियत (status):

व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके जन्म होने के साथ से शुरू होता है और मृत्यु होने के साथ ही समाप्त हो जाता है और सामान्य अर्थ में, विधि उसी दृष्टिकोण को अपनाती है। मृत व्यक्ति कोई विधिक व्यक्ति नहीं होते हैं क्योंकि उनका न कोई कर्तव्य है न कोई अधिकार। विधि के नजरों में शव किसी की संपत्ति नहीं है। वसीयती व्ययन द्वारा इसका व्ययन नहीं किया जा सकता है।

इन रि शॉ, 1886 के वाद में धारित किया गया कि केश के रख-रखाव के लिए स्थायी न्यास अवैध तथा शून्य है।

विलियम्स बनाम विलिम्स (1882) - यह प्रतिपादित किया गया कि कोई भी व्यक्ति अपने जीवन काल में अपने मृत शरीर के व्ययन करने संबंधी वसीयत नहीं कर सकता है।

इन रि बनाम इनसोर (1887) - मृत व्यक्ति के प्रति अपमान लेख विधि की नजरों में अपराध नहीं है; मृत व्यक्ति को कोई अधिकार नहीं है और वह कोई अपकार नहीं सहता है।

मृत व्यक्ति के विरुद्ध अपमानकारी (libelons) आक्रमण, तथापि अपमानकारी मृत व्यक्ति के संबंधियों की प्रेरणा पर उत्तरदायी हो सकता है जब इसका प्रकाशन वंशजों पर आड़ा आक्रमण है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 499 के अधीन किसी मृत व्यक्ति को कोई लांछन लगाना मानहानि की कोटि में आ सकता है।

अजात बच्चों का विधिक हैसियत -

पैटन - "गर्भ में स्थित शिशु का विधिक व्यक्तित्व नहीं होता है और उसे कोई अधिकार नहीं हो सकता है।" यह दृष्टिकोण केवल उन बच्चों के लिए ही नहीं है जो गर्भ में स्थित (en ventre sa mere) हैं बल्कि उन बच्चों पर भी लागू होता है जो अभी तक गर्भ में ही नहीं आये हैं। विधि में ऐसा कुछ नहीं है जो किसी व्यक्ति को, उसके जन्म होने के पूर्व संपत्ति रखने से विरत किया जा सके।

निगमित व्यक्तित्व के सिद्धांत (Theories of Coporate personality):

1. प्रयोजन सिद्धांत (Purpose Theory):

'प्रयोजन सिद्धांत' (Purpose theory) का कहना है कि केवल मानव-प्राणियों का ही व्यक्तित्व होता है, विधिक-व्यक्ति बिल्कुल ही व्यक्ति नहीं होते हैं। वे केवल 'कर्ताशून्य संपत्तियां' (Subjectless properties) हैं जो कतिपय प्रयोजनों के लिए अभिप्रेत हैं। यह सिद्धान्त मुख्यतः जर्मन विधि के 'स्टिफटंग' (Stifung) और रोमन विधि के हेरिडिटास जेसेन्स' (hereditas jacens) के स्पष्टीकरण के लिये कहा गया था। यह सिद्धान्त आंग्ल विधि पर लागू नहीं होता जहां न्यायाधीशों ने बारम्बार यह कहा है कि निगम व्यक्ति है।

2. उपक्रम सत्ता का सिद्धांत (The theory of Enterprise Entity):

इस सिद्धांत में, निगमित सत्ता मूलाधार उपक्रम की वास्तविकता पर आधारित है। निगमित फार्म की विधि द्वारा स्वीकृति जो प्रथम दृष्टया: यह स्थापित करती है कि परिसंपत्तियां, क्रियाकलाप, सहयोग का उत्तरदायित्व उपक्रम का एक भाग है जहां विधि द्वारा कोई औपचारिक स्वीकृति नहीं है, अस्तित्व, उत्तरदायित्व की सीमायें तथा इकाई की अन्य बातें पूर्व स्थापित उपक्रम द्वारा निर्धारित की जाती है।

इस तरह का दृष्टिकोण अभिगमित संघ की ओर विधि की प्रवृत्ति की व्याख्या नहीं करता है और विविध परिस्थितियां के लिए स्थान छोड़ देता है जिसमें निगमित एकता की अवहेलना होती है। यह सिद्धांत उपयोगितावादी (utilitarian) प्रकार की है।

3. प्रतीक सिद्धांत या कोष्ठक सिद्धांत (Bracket theory or Symbolist theory):

यह सिद्धान्त कहता है कि निगम के सदस्य ही मात्र वे व्यक्ति हैं जिनके अधिकार और कर्तव्य होते हैं। विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने का अर्थ है, सदस्यों के चतुर्दिक एक कोष्ठक लगा देना जिससे उनको एक इकाई के रूप में माना जाये। यह सुविधा के प्रयोजनों के लिए किया जाता है। इस सिद्धांत का यह कहना है कि केवल मानव-प्राणियों का ही 'व्यक्तित्व' होता है, और समूहों का नहीं। इस सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण तात्पर्य (implication) यह है कि विधि, कोष्ठक को किसी भी समय हटा सकती है और यथार्थ वस्तु-स्थिति को जानने के लिए सत्ता के पीछे देख सकती है।

4. हाहफेल्ड का सिद्धांत -

हाहफेल्ड ने भी निगमित निकाय के बारे में एक सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। उसका सिद्धांत कोष्ठक सिद्धांत के घनिष्ठ रूप से संबंधित है। वह कहता है कि केवल मानव-प्राणियों के ही अधिकार और कर्तव्य होते हैं और "निगमित व्यक्तित्व केवल एक प्रक्रिया संबंधी रूप है" जो तात्कालिक प्रयोजन के लिए विधिक संबंधों के एक जटिल समूह के एक सुविधापूर्ण तरीके से कार्यान्वयन के लिए प्रयोग किया गया है।

5. केल्सन का सिद्धांत -

केल्सन व्यक्तित्व क संकल्पना के प्रति एक विश्लेषणात्मक और प्रारूपिक (formal) दृष्टिकोण अपनाता है। वह कहता है कि विधिक प्रयोजनों के लिए प्राकृतिक और विधिक व्यक्तियों के बीच कोई विषमता नहीं है। व्यक्तित्व सदा ही विधि का एक विषय है। विधि में व्यक्तित्व का अर्थ अधिकारों और कर्तव्यों का समुच्चय है। कोई सत्ता जिसके पास यह समुच्चय होता है, विधि की दृष्टि में व्यक्ति होता है। प्राकृतिक और विधिक व्यक्तियों के बीच भेद करना अर्थहीन बात है।

6. कल्पितार्थ सिद्धांत (Fiction theory):

इस सिद्धांत के मुख्य समर्थक सेविग्नी, सामण्ड हैं। न्यायिक व्यक्तियों के साथ इस प्रकार संव्यवहार किया जाता है मानो वे व्यक्ति हैं अर्थात् मानव प्राणी। यह माना जाता है कि सिनीबाल्ड फिच्ची ने, जो 1234 में ई. में पोप इनोसेंट IV बना, सर्वप्रथम परसोना फिक्टा (persona ficta) पर विचार दिया। यह स्पष्ट है कि यह सिद्धांत पूर्व कल्पना करता है कि केवल मानव प्राणियों को ही उचित तथा व्यक्ति कहा जा सकता है। सेविग्नी ने घोषणा किया कि - "प्रत्येक एकल व्यक्ति और केवल एकल व्यक्ति अधिकारों को लेने के योग्य है।" और कहा कि व्यक्ति की मूल संकल्पना को मानव (man) के विचार से अवश्य मेल खाना चाहिए।

वे सभी बातें जो एक कल्पितार्थ सिद्धांत कहता है यह है कि कुछ समूह और संस्थान ऐसे माने जाते हैं मानो वे व्यक्ति हैं और यह आवश्यक नहीं समझते कि उत्तर क्यों दिया जाये। यह सिद्धांत आंग्ल विधि पर सर्वाधिक लागू होने योग्य हैं, जहां न्यायालय विधिक व्यक्तियों को अपने द्वारा मान्यता देने में किसी कठोर सिद्धांत पर नहीं चले हैं। इस सिद्धांत में अधिक नमनीयता है और यह विधिक व्यक्तित्व पर विभिन्न निर्णयों को निबाह सकता है (जो कि यदा-कदा असंगत भी होते हैं)।

7. रियायत सिद्धांत (Concession theory):

यह सिद्धांत 'कल्पितार्थ सिद्धांत' का सहवर्गी है। दोनों सिद्धान्तों के समर्थक प्रायः वे ही विधिशास्त्री हैं। यह सिद्धांत कहता है कि निगमित निकाय केवल विधि द्वारा मंजूर सीमा तक ही विधिक व्यक्तित्व रखते हैं। यहां विधि का अर्थ है, राज्य।

यह 'कल्पितार्थ सिद्धांत' से एक महत्वपूर्ण बात में भिन्न है। वह यह है कि पहले कहा गया सिद्धांत विधि और राज्य को एक रूप में देखता है, जब कि बाद में कहा गया ऐसा नहीं करता।

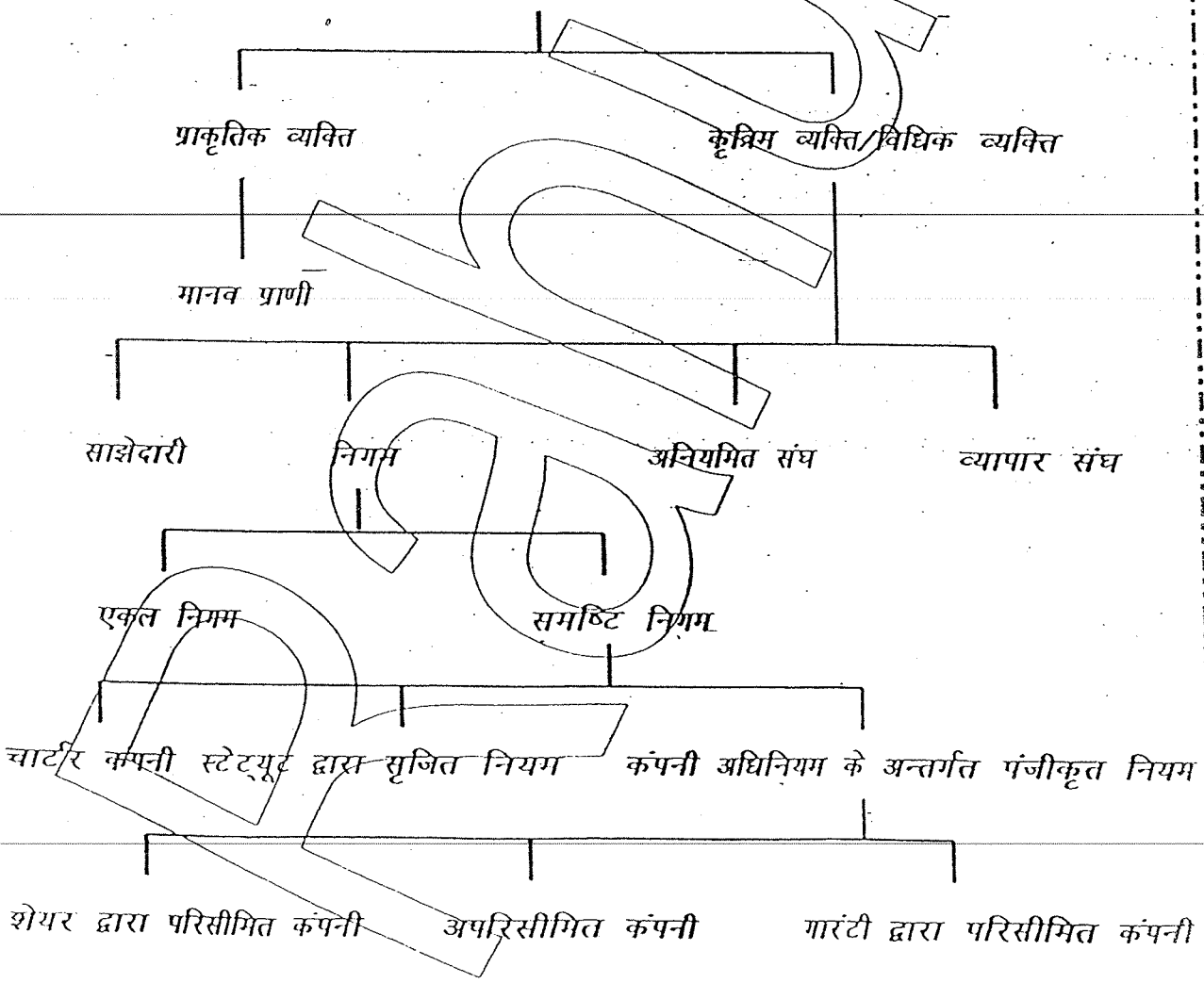
8. यथार्थवादी और कायिक सिद्धांत -

इस सिद्धांत का एक अन्य नाम भी है, अर्थात्, 'कायिक सिद्धांत' (Organic theory)। इस सिद्धांत का मुख्य प्रतिपादक ग्रीयर्क है। मेटलैण्ड भी इसका समर्थन करता है। यह सिद्धांत कहता है कि किसी समूह की वास्तविक इच्छा, वास्तविक मन, और कार्य की एक वास्तविक शक्ति होती है।

किसी निगम में वे सारी विशेषताएं होती हैं जो एक प्राकृतिक व्यक्ति की होती हैं। इसलिये विधिक व्यक्ति उसी अर्थ में यथार्थ होते हैं जिस अर्थ में मानव-प्राणी यथार्थ हैं। विधिक व्यक्तित्व कल्पित नही होता है, न राज्य की मान्यता पर निर्भर करता है। इस सिद्धांत में निगमित जीवन पर दिये गये जोर में यथार्थता का तत्व तो है (कम से कम इसमें आधुनिक युग में) किन्तु निगम पर यथार्थ इच्छा आरोपित करना और जीवित शरीर से इसकी तुलना करना इसमें बेतुकापन ला देता है।

9. संस्थात्मक सिद्धांत (Institutional theory):
   - यथार्थवादी सिद्धांत से बहुत घनिष्ठ रूप से संबंधित।
   - हौरू (फ्रांसीसी) इसके प्रवर्तक हैं।
   - समूहवादी विचारधारा।
   - व्यक्ति का संस्था में विलय हो जाता है और वह इसका अंग हो जाता है।
   - बहुत्ववादी निर्वचन - राज्य के सर्वोच्च संस्था के अन्तर्गत कई संस्थाएं हैं।
   - फासिस्ट निर्वचन - राज्य ही एक मात्र संस्था है और इसके भीतर की अन्य संस्थाएं इसके भाग हैं, और इसलिये उन्हें राज्य के मेल में रहना चाहिए।

विधि के अधीन व्यक्ति (Persons subject to law)



निगमित व्यक्तित्व की समस्या - निगम का अपने सदस्यों से भिन्न व्यक्तित्व होता है।
मामले -

सालोमन बनाम सालोमन एंड लिमिटेड (1897) - इस वाद में हाउस ऑफ लार्ड्स ने कंपनी और इसके अंशधारियों को एक रूप मानने से इंकार कर दिया। यह निर्णय किया गया कि 'वह कंपनी के

विरुद्ध जो कि वास्तव में वह स्वयं ही है एक बन्धपत्रधारक (bond holder) के प्राथमिकता पाने के अधिकारों का दावा, असल लेनदारों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हुए कर सकता है।'

फरार बनाम फरार (1889) - इस वाद में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि किसी व्यक्ति, किसी ऐसे निगम को कोई विक्रय, जिसका कि वह सदस्य है, न तो प्रारूपत: और न सारत: एक व्यक्ति द्वारा स्वयं अपने को किया गया विक्रय है। भाव यह है कि निगमित निकाय, अपने को संघटित करने वाले व्यक्तियों से भिन्न होती है। निगम के किसी सदस्य द्वारा स्वयं निगम को किया गया विक्रय प्रत्येक अर्थ में विक्रय है, जो साम्या और विधि, दोनों ही में मान्य है।

पीपुल्स प्लैजर पार्क कं. बनाम रोहेल्डर - यह एक महत्वपूर्ण अमेरिकन मामला है, जिसमें यही सिद्धान्त कहा गया था। इस मामले में प्रश्न यह था कि क्या यह प्रतिबन्धात्मक प्रसविदा (restrictive covenant) कि भूमि में हक कभी किसी काले व्यक्ति को नहीं जाना चाहिए किसी ऐसे निगम को किए गये अन्तरण को रोकने का काम कर सकती थी जिसके सभी सदस्य हब्शी थे? यह निर्णय किया गया कि निगम को किया गया अन्तरण विधिमान्य था क्योंकि निगम अपने सदस्यों से भिन्न होता है।

अवगुण्ठन को उठाने का सिद्धांत (Doctrine of lifting the veil):

जब निगम का सृजन कुछ अंतरस्थ हेतु के लिए होता है तब निगम के पीछे की वास्तविकता देखने के लिए निगम का घूंघट उठाया जाता है ⇒ *सालोमन बनाम सालोमन* के नियम का विलयन।

केस - *डेमलर कं. बनाम कान्टीनेन्टल टायर कं. (1916)* - घूंघट का उठाना लागू किया गया - समस्त अंशधारी जर्मनी (शत्रु) थे ⇒ शत्रु कंपनी।

यू. एस. बनाम लेहाई वेली सेल रोड कं. (यू. एस.) - विधि उसी व्यक्ति द्वारा कोयले का परिवहन निषिद्ध किया गया था जो खान में इसकी खुदाई कर रहा है - रेलवे कंपनी ने कोयले की कंपनी के समस्त अंशों को खरीद लिया ⇒ घूंघट का उठाना लागू किया गया।

- न्यायालयों ने किसी भी सिद्धांत का एक रूप में अनुसरण नहीं किया है और अधिकांशत: सुविधा के अनुसार और नीति के आधार पर अग्रसर हुये हैं ⇒ कोई निश्चित सिद्धांत का अनुसरण नहीं किया गया है।

विधिक व्यक्तित्व के सिद्धांत और व्यवहार के बीच विषमता (Divergence between practice and theory of legal personality):

फीडमैन - नियमित निकाय संबंधी विधिक सिद्धांत और व्यवहार एक दूसरे स्वतंत्र रूप में विकसित हुये हैं। 'रियायत सिद्धांत' एकदलीय (totalitarian) प्रणाली में अधिक प्रयोज्य होता है।

निगम का दायित्व (Liability of a Corporation):

1. **संविदाओं के लिए (for contracts):**
   - संविदा का प्रारूप (form of contract) - निगम की मुहर के अधीन अभिकर्ता के माध्यम से कार्य करता है। व्यक्तियों या संविदाओं के मामले में प्रारूप एक ही होता है।

   इंग्लैंड में -
   1) यदि राजकीय चार्टर द्वारा निर्मित निगम है तो निगम का सामर्थ्य व्यक्तियों की तरह होगा।
   2) यदि स्टेट्यूट द्वारा निगम तो - अनिगम/स्टेट्यूट की ज्ञापन पर निर्भर करता है।

   भारत में, कोई सामान्य लॉ - किसी निगम की संविदा करने की शक्ति स्टेट्यूट पर निर्भर करता है।

2. अपकृत्य के लिए निगमों का दायित्व **(for torts):**

   शक्ति के भीतर (intra vires) के कार्यों के लिए प्रतिनिहित (vicarious) दायित्व किन्तु शक्ति - बाह्य (ultra vires) के कार्यों के संबंध में कठिनाई है - (i) बिना किसी प्राधिकार के कार्य - कंपनी उत्तरदायी है, (ii) स्पष्ट प्राधिकार के अधीन कार्य - यू. एस. - उत्तरदायी नहीं है।

   गुड हार्ट - दायी (यू. एस. में नामंजूर)

   विनफील्ड - निगम एक संयुक्त अपकृत्यकर्ता (joint tort-feasor) के रूप में दायी होता है।

   एक निर्मित मामला - *कैम्पबैल बनाम पैडिंगटन कारपोरेशन (1911)* - कंपनी दायी।

3. आपराधिक कार्यों के लिए निगमों का दायित्व –

इंग्लैंड में, आरंभ में यह मत अपनाया गया था कि निगम को किसी अपराध के लिये दायी नहीं बनाया जा सकता।

(दायी, जहां मन:स्थिति (mens rea) अपेक्षित है)। विशेषकर वैसे मामले में जब जुर्माना आनुकल्पिक दंड होता है।

डी. पी. पी. बनाम केन्ट एण्ड ससेक्स कन्ट्रैक्टर्स लि. में कंपनी के प्रबंधक ने पेट्रोल कूपन प्राप्त करने के लिए झूठी विवरणी (रिटर्न) भेजी। न्यायालय ने कंपनी को दायी ठहराया और कहा कि अपने प्रबंधक के माध्यम से कंपनी ने अपसधं किया था।

आर. बनाम सी. आर. हौलेज लि. में कंपनी को कपट-वंचित (defraud) करने के षड्यन्त्र के लिये दायी ठहराया गया। इसके प्रबन्ध-निदेशकों और कुछ अन्य ने एक दूसरे कंपनी को कपट-वंचित करने का षड्यंत्र किया था।

मूर बनाम बेसलर लि. में कंपनी को इसके सचिव के आपराधिक कार्य के लिए दोषी ठहराया गया।

भारत में, उन स्टेट्यूट द्वारा विशिष्ट उपबन्धों का निर्माण जिसमें दाण्डिक प्रावधान सम्मिलित होते हैं। उदाहरण के लिए, कंपनीज़ एक्ट : कार्यकारी व्यक्ति और कंपनी उत्तरदायी – यदि अपराध को रोकने के लिए उचित तत्परता दिखायी जाती है तब उत्तरदायी नहीं या बिना ज्ञान की स्थिति में।

कुछ अन्य बिन्दुएं –

हैसियत (Status): परिभाषाएं –

1. सामंड – चार अर्थ
   1) किसी भी प्रकार की विधिक स्थिति, चाहे व्यक्ति या सांपत्तिक (proprietary)
   2) व्यक्तिक विधिक स्थितियां, सांपत्तिक संबंधों को अलग करके
   3) व्यक्तिक क्षमताएं और असामर्थ्य जो कि व्यक्तिक हैसियत के तत्वों के विरुद्ध है।
   4) अनिवार्य जो कि परम्परागत विधिक स्थिति के विरुद्ध है।

2. ऑस्टिन –

ऑस्टिन के अनुसार, अधिकारों और कर्तव्यों या सामर्थ्यों और असामर्थ्यों का ताना-बाना जो विशेष रूप से एक छोटे वर्ग को प्रभावित करता है, 'हैसियत' कहा जाता है।

3. एलेन –

डॉ. एलेन कहता है कि हैसियत को किसी समूह की सदस्यता के तथ्य या दशा के रूप में वर्णित किया जा सकता है जिसकी शक्तियां प्रत्यक्ष विधि द्वारा अवधारित की जाती हैं; हैसियत केवल किसी विशिष्ट संबंध को प्रभावित नहीं करती हैं, अपितु एक दशा होने से सामान्यत:, यद्यपि बदलती हुई मात्रा में किसी सदस्य के दावों और शक्तियों को प्रभावित करती है।'

4. सामान्य परिभाषा (General definition):

वे अधिकार और कर्तव्य जो किसी व्यक्ति को, उसके किसी विशेष कार्य या समूह का सदस्य होने के कारण, होते हैं। उदाहरण, अल्पसंख्यक, विवाह, कार्यालय आदि।

- एक व्यक्ति को, एक ही समय, कई हैसियत प्राप्त हो सकते हैं।
- रि लक्सु सेट्लमेंट ट्रस्ट – जब एक देश में विधि द्वारा हैसियत का सृजन होता है, तो सभी देशों में इसकी मान्यता नहीं मिल सकती है।

सामर्थ्य –

- किसी व्यक्ति के अधिकार और शक्तियां जो उसके किसी विशिष्ट पद पर होने कारण होती है।
- किसी व्यक्ति की अनेक सामर्थ्य हो सकती है किन्तु केवल एक ही विधिक व्यक्तित्व होता है।
- एक व्यक्ति अपने आप को किसी दूसरी सामर्थ्य में नहीं देख सकता है।

विधिक व्यक्ति (Legal persons):

- सामण्ड – "एक विधिक व्यक्ति, मानव-प्राणी से इतर कोई विषय-वस्तु है जिसको विधि व्यक्तित्व प्रदान करती है।" विधि किसी वास्तविक वस्तु या पदार्थ का मानवीकरण करती है, और तब इसे काल्पनिक (fictitious) व्यक्ति प्रदान करती हो।
- वस्तु/पदार्थ – काया (corpus)/विधिक व्यक्तित्व प्रदान करना।
- केवल मानवीकरण विधिक व्यक्तित्व प्रदान नहीं करता है (मन (animus) अपेक्षित होता है)।
- न्यायाधीशों का पीठ, एक कैबिनेट – कोई विधिक व्यक्तित्व नहीं।
- एक कंपनी एक विधिक व्यक्ति है लेकिन इसके अंशधारी प्राकृतिक व्यक्ति होते हैं।

स्वामित्व
(Ownership)

स्वामित्व की संकल्पना विधिक और सामाजिक हित दोनों के लिए है। न केवल न्यायालय ने इस विचार का प्रयोग बदलते हुये व्यक्ति और समाज के हित के दृष्टिकोणों को कार्यान्वित करने के लिए किया है बल्कि इसमें इसकी इतनी क्षमताएं निहित हैं कि हाल के समय में यह सरकारी नीति का केन्द्र बन गया है।

स्वामित्व के अन्तर्गत असंख्य संख्या में स्वामित्वाधीन वस्तु के संबंध में स्वतंत्रताएं, शक्तियां, उन्मुक्तियां सम्मिलित होती हैं।

ऑस्टिन की परिभाषा - ऑस्टिन ने स्वामित्व की परिभाषा इस प्रकार दी कि यह 'किस नियंत वस्तु पर अधिकार है जो उपयोग की दृष्टि से असीम, व्ययन की दृष्टि से अनिर्बन्धित और अवधि की दृष्टि से असीमित होता है।'

सामण्ड की परिभाषा - "स्वामित्व, सर्वाधिक व्यापक अर्थ में, एक व्यक्ति और किन्हीं अधिकारों के, जो उसमें निहित है, बीच संबंध को लक्षित करता है। इस अर्थ में, जिस बात का कोई मनुष्य स्वामित्व रखता है वह सभी मामलों में एक अधिकार है। इस विस्तृत अर्थ में स्वामित्व का विस्तार अधिकारों के समस्त वर्गों तक होता है, चाहे वे सम्पत्तिक हों, या वैयक्तिक, चाहे सर्वबन्धी हों या व्यक्तिबन्धी हों या स्व-सम्पत्ति में हों या पर संपत्ति में, और यह न केवल कठोर अर्थ में अधिकारों को ही लागू होता है अपितु स्वतंत्रताओं, शक्तियों और उन्मुक्तियों पर भी लागू होता है।"

स्वामित्व के आवश्यक तत्व -

1. कब्जा करने का अधिकार (Right of possession):

स्वामी को उस वस्तु का कब्जा करने का अधिकार है जिसका वह स्वामित्व धारण करता है। परन्तु उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह उसका वास्तविक कब्जा करे जब तक ऐसे कब्जा का उसका अधिकार नहीं हो जाता। इस प्रकार, यदि M की घड़ी को N चुरा लेता है। N की घड़ी पर कब्जा हो जाता है किन्तु M तुरंत कब्जा के अधिकार का स्वामी बना रहता है। पुनः यदि M अपने स्कूटर को N को किराये पर देता है, N को न तो उस पर कोई अधिकार है न ही कब्जा करने का तुरंत अधिकार है। वह तब भी उसका स्वामी है।

2. प्रयोग करने तथा स्वामित्वाधीन वस्तु का उपभोग करने का अधिकार (Right to use and enjoy the thing owned):

स्वामी को स्वामित्वाधीन वस्तु का इस्तेमाल और उपभोग करने का अधिकार है यदि वह स्वामित्वाधीन वस्तु का प्रबन्ध करने का अधिकार, उसके प्रयोग के ढंग तथा उससे आय प्राप्त करने का अधिकार रखता है। जबकि कब्जा करने का अधिकार, कठोर अर्थ में, अधिकार है, परन्तु वस्तु का प्रयोग करने तथा उसका उपभोग करने का अधिकार का वृहत तात्पर्य है, ये अधिकार स्वतंत्रताओं की प्रकृति में हैं।

3. उपभोग करने, नष्ट करने या अन्तरण करने का अधिकार (Right to consume, destroy or alienate):

वस्तु के स्वामी को इसका उपभोग करने, इसे नष्ट करने या इसका अंतरण करने का अधिकार होता है। जबकि उपभोग करने और नष्ट करने का अधिकार स्वतंत्रताएं हैं, इसका अंतरण करने का अधिकार के अन्तर्गत शक्ति का अस्तित्व अन्तर्ग्रस्त होता है।

ऑस्टिन - अन्तरण करने का अधिकार, जो स्वामित्व के आवश्यक पहलू होते हुए, के अतिरिक्त व्ययन की दृष्टि में अनियंत्रित (unrestricted) है।

परन्तु, संपत्ति का अंतरण करने में विधि द्वारा स्वामी की शक्ति पर निर्बंधन अभ्यारोपित किया जाना है।

अनिर्धारित अवधि (Indeterminate duration):

स्वामित्व का दूसरी विशेषता यह है कि इसकी अनिर्धारित अवधि होती है। स्वामित्व का हित स्थायी है क्योंकि यह या तो भावी नियत बिन्दु या स्वामी की मृत्यु द्वारा निर्धारण के अध्याधीन है।

अन्तिम, स्वामी को अवशिष्ट विशेषता है - स्वामी स्वामित्वाधीन वस्तु के संबंध में, कई अधिकारों के साथ अलग हो सकता है। फिर भी, वह स्वामित्व की अवशिष्ट विशेषता होने के कारण, उसका स्वामी बना रहता है।

स्वामित्व और कब्जा (Ownership and Possession):

स्वामित्व, कब्जा की एक सजातीय संकल्पना है, इसलिये इन दोनों के बीच संबंध के बारे में कुछ शब्द कहना अप्रासंगिक नहीं होगा। सामण्ड तथ्य और अधिकार के आधार पर इन दोनों के बीच भेद करता है। कब्जा के तथ्य के रूप में वह बात है जो कि स्वामित्व के अधिकार के रूप में है। कब्जा किसी दावे का वस्तुतः प्रयोग है, स्वामित्व एक दावे की विधितः मान्यता है। मैं किसी वस्तु का स्वामी हूं जब कि इसके प्रति मेरा दावा विधि में अभिव्यक्त राज्य की इच्छा द्वारा कायमरखा जाता है। मेरा उस पर कब्जा होता है, जबकि इसके प्रति मेरा दावा अपने दावे को मनवाने वाली मेरी इच्छा द्वारा कायम रखा जाता है। स्वामित्व विधि की गारंटी है, कब्जा तथ्यों की गारंटी है। यदि संभव हो सके तो दोनों प्रकार की गारंटी रखना अच्छा है; और वास्तव में वे सामान्यतः सह-अस्तित्व वाले होते हैं।

स्वामित्व और परिबंध (Ownership and Encumbrance):

संपत्ति का स्वामित्व का अधिकार भी ऐसी संपत्ति पर परिबंध से भिन्न होता है। कोई परिबंध वह है जो किसी अधिकार को सीमित करता है, यद्यपि यह स्वयं भी एक अधिकार है और परिबंध वह है जिसका अन्य की संपत्ति के ऊपर अधिकार होता है। उदाहरण के लिए, M किसी निश्चित संपत्ति के टुकड़े का स्वामी हो सकता है और N को उस पर मार्ग का अधिकार हो सकता है।

मुख्य परिबंध हैं - पट्टा, भोगाधिकार (servitude) और प्रतिभूतियां (securities)।

स्वामित्व की विषयवस्तु (The subject matter of ownership):

स्वामित्व की विषयवस्तु के अन्तर्गत भौतिक पदार्थ जैसे भूमि और जंगम संपत्ति (chattels) आते हैं। परन्तु स्वामित्व भूमि और जंगम संपत्ति तक सीमित नहीं होते हैं, इसके अंतर्गत दूसरों की भूमि में हित, उसके कारण रूपये, कंपनी के अंशों में निवेश, पेटेन्ट, प्रतिलिप्यधिकार (copy right) आदि भी सम्मिलित होते हैं।

सामण्ड - "यद्यपि अपने विस्तृत अर्थ में स्वामित्व की विषय-वस्तु सभी स्थितियों में एक अधिकार होता है, किन्तु इस शब्द का एक संकुचित अर्थ भी है जिसमें हम भौतिक वस्तुओं के स्वामित्व की बात करते हैं।"

सामण्ड के अनुसार स्वामित्व का अर्जन मुख्यतया दो तरह से किया जा सकता है -

1. विधि प्रवर्तन द्वारा (by operation of law)
2. कुछ कृत्य या घटना के द्वारा

निर्वसीयता (intestacy) और दिवालियापन (bankruptcy) का नियम प्रथम विधि के अच्छे उदाहरण हैं, जहां तक वे एक आदमी की संपत्ति को दूसरे आदमी की संपत्ति में निहित करने का प्रवर्तन करते हैं।

दूसरी विधि में मूल अर्जन के मामले सम्मिलित होते हैं। स्वामित्व का मूल अर्जन उस समय होता है जब स्वामित्व का अर्जन अर्जक द्वारा किसी व्यक्तिगत कार्य के लिये किया जाता है।

स्वामित्व का अधिकार और किसी अधिकार का स्वामित्व (The right of ownership and ownership of a right):

पोलाक - "स्वामित्व के अधिकार को विधि द्वारा अनुज्ञात प्रयोग और व्ययन की शक्तियों की पूर्णता के रूप में वर्णित किया जा सकता है।" दूसरी ओर, अधिकार का स्वामित्व न्यायिक संबंध को इंगित करता है जो व्यक्ति और किसी अधिकार के बीच विद्यमान रहता है। अधिकार का स्वामित्व अमूर्त (incorporeal) स्वामित्व भी कहलाता है। इस प्रकार, एक पट्टेदार पट्टाधिकार का स्वामित्व रखता है।

सामण्ड - यदि मेरा अधिकार दूसरे की भूमि में सालों की अवधि का है, मैं उस अधिकार या अवधि का स्वामित्व रखता है। यदि मेरा स्वयं भूमि पर अधिकार है तो मेरा अधिकार एक व्यापक अधिकार है जो उस अधिकार की चीज या वस्तु के न्यायिक महत्व को अलग करता है। तबयह कहा जाता है कि मैं इस पूर्ण अधिकार का स्वामित्व रखता हूं न कि स्वयं भूमि की।

स्वामित्व का प्रकार (Kinds of ownership):

1. मूर्त और अमूर्त स्वामित्व (Corporeal and incorporeal ownership):

मूर्त स्वामित्व किसी भौतिक पदार्थों अर्थात् कुछ मूर्त वस्तुएं, जंगम और स्थावर में स्वामित्व का अधिकार, का स्वामित्व है। इस प्रकार, भूमि, भवन या वाहन और अन्य जंगम वस्तुएं मूर्त स्वामिती होगी।

अमूर्त स्वामित्व किसी अधिकार का स्वामित्व है। इस प्रकार, एक बन्धकदार अपने बंधक अधिकार का स्वामित्व रखता है, एक पट्टेदार अपने पट्टाधिकार का स्वामित्व रखता है। अन्य उदाहरण के लिए, अंश, ऋण, पेटेन्ट।

सामण्ड - "वह भौतिक पदार्थ का स्वामी होता है जो इसके सामान्य या अवशिष्ट प्रयोग के लिए अधिकार का स्वामित्व रखता है, परन्तु दूसरे व्यक्तियों में परिबंध के माध्यम से निहित प्रयोग के सभी विशिष्ट और सीमित अधिकारों की कटौती के बाद।"

2. न्यास और फायदाप्रद स्वामित्व (Trust and beneficial ownership):

एक न्यास डुप्लिकेट स्वामित्व का उदाहरण है। सामण्ड के अनुसार, न्यास संपत्ति वह है जो एक ही समय दो व्यक्तियों के स्वामित्वाधीन होता है, इन दोनों स्वामियों के बीच ऐसे संबंध होते हैं कि इनमें से एक दूसरे के लाभ के लिए अपने स्वामित्व का प्रयोग करने के लिए एक दायित्व के अधीन होता है। पूर्ववर्ती को न्यास कहा जाता है और उसका स्वामित्व न्यास स्वामित्व है। पश्चात्वर्ती हिताधिकारी कहलाता है और उसका स्वामित्व फायदाप्रद स्वामित्व (beneficial ownership) कहलाता है। न्यासी को उस संपत्ति के फायदाप्रद उपभोग के अधिकार नहीं होते। वह केवल एक अभिकर्ता की हैसियत रखता है। उसका स्वामित्व सार की अपेक्षा प्रारूप का विषय अधिक होता है, और वास्तविकता की अपेक्षा नाममात्र का अधिक होता है।

3. विधिक और साम्यिक स्वामित्व (Legal and equitable ownership):

विधि द्वारा मान्य स्वामित्व विधिक स्वामित्व है जबकि साम्या (equity) द्वारा मान्य स्वामित्व साम्यिक स्वामित्व कहलाता है।

विधिक अधिकार का प्रवर्तन सर्वबन्धी (reum) में होता है जबकि साम्या का केवल व्यक्तिबन्धी (personam) में होता है।

इन दोनों में भेद भारतीय विधि में मान्य नहीं है।

4. एकल और सह-स्वामित्व (Sole and co-ownership):

स्वामित्व का सामान्य सिद्धान्त यह है कि यह केवल एक व्यक्ति में होना चाहिए। किन्तु कभी-कभी यह दोहरा होता है, या दूसरे शब्दों में, कभी-कभी एक ही वस्तु में एक ही समय में स्वामित्व का अधिकार दो या अधिक व्यक्तियों में निहित होता है, जब स्वामित्व केवल एक व्यक्ति में

निर्वापक (Extinctive) अर्जन –

जब स्वामित्व किसी व्यक्ति द्वारा उसके ऐसे किसी कार्य द्वारा अर्जित किया जाता है, जो पूर्ववर्ती स्वामी के हक को निर्वापित (extinguishes) कर देता है, तो इसे निर्वापक अर्जन कहते हैं। उदाहरण के लिए, चिरभोग द्वारा स्वामित्व का अर्जन निर्वापक अर्जन है।

रेनक का सिद्धांत –

रेनक ने स्वामित्व की संकल्पना का विश्लेषण, अपनी (मार्क्सवादी) आधारभूमि से किया है। उसके सिद्धांत की मुख्य बात यह है कि पूंजीवादी समाज में औपचारिक विधिक संकल्पनाएं समाज में संकल्पनाओं के वास्तविक आर्थिक तत्व के अनुरूप नहीं रह जाती है।

रीतियां - मूल (original) और व्युत्पादित (derivative)।

मूल - (i) पूर्ण (absolute) (ii) निर्वापक (extinctive) (iii) सहायक (Accessory)

(1) परिग्रह (occupatio) (2) विशिष्टकारिता (specificatio)।

कब्जा (Possession):

किसी व्यक्ति द्वारा किसी वस्तु पर भौतिक नियंत्रण एक तथ्य है जो विधि के बाह्य तथा विधि से स्वतंत्र है। जब विधि अस्तित्व में आ जाती है तो यह तथ्य कब्जा (possession) के रूप में जाना जाता है।

कब्जा –

सामण्ड - कुछ संबंध, कब्जा की तरह, मानव के लिए महत्वपूर्ण हैं और हम विधि की किसी भी प्रणाली की अपेक्षा कर सकते हैं, चाहे कितना भी प्राचीन (primitive) क्यों न हो, ताकि इसके संरक्षण के लिए नियम प्रदान किया जा सके। वह मानव जीवन और मानव समाज, जिसे हम जानते हैं, भौतिक पदार्थों के उपभोग के बिना असंभव होगा। हमें खाने के लिए भोजन चाहिए, पहनने के लिए कपड़े और इस्तेमाल करने के लिए औज़ार चाहिए जिससे कि हम अपनी वातावरण से जीविकावृत्ति अर्जित कर सकें।

किन्तु भोजन करने के लिए, सर्वप्रथम हमें इसे प्राप्त करना चाहिए, कपड़े पहने के लिए हमें कपड़े का अर्जन करना चाहिए तथा औज़ारों का इस्तेमाल करने के लिए हमें उस पर कब्जा करना चाहिए। इसलिए भौतिक पदार्थों का कब्जा जीवन के लिए आवश्यक है, व्यक्ति और वस्तुओं के बीच यह निकटतम आधारभूत संबंध है।

परन्तु, कब्जा का केवल अर्जन काफी नहीं होगा। यह आवश्यक है कि समाज व्यक्तिगत कब्जा के लिए सम्मान का वातावरण प्रदान करता है। इस प्रकार, यदि कोई व्यक्ति कभी भी सुनिश्चित नहीं हो सकता है कि उसके सामान्य भौतिक कब्जे जैसे कपड़ा, भोजन, काम को उसके पड़ोसी छीन नहीं सकेंगे, तब जीवन सफल नहीं होगा। अव्यवहित और शांतिपूर्ण उपभोग का उपाय (measure) आवश्यक है, यदि कोई व्यक्ति भौतिक पदार्थों से कोई अभिलाभ व्युत्पन्न करना चाहता है। इस प्रकार यह आवश्यक है कि विधि कब्जे को संरक्षण प्रदान करती है।

सामण्ड के अनुसार, कब्जे की संकल्पना को परिभाषित करना उतना ही कठिन है जितना उसकी रक्षा करना आवश्यक है।

सामण्ड (तथ्यतः कब्जा) (possession in fact) की व्याख्या इस प्रकार करता है –

तथ्यतः कब्जा किसी व्यक्ति और उस वस्तु के बीच में एक संबंध है जो मेरे कब्जे में है। यथार्थतः वे वस्तु जो मेरे पास हैं, वे वस्तुएं जिसे मैं अपने हाथ में रखता हूं, वे कपड़े जिन्हें मैं पहनता हूं। मेरे भौतिक नियंत्रण के अधीन उनका कब्जा करना, उन्हें अर्जित करना है। यदि मैं कोई जंगली पशु पकड़ता हूं, मैं उसे अपने कब्जे में लेता हूं, यदि वह मेरे नियंत्रण से भाग निकलता है, तब मैं अपना कब्जा खो देता हूं। प्रथम स्थान पर, कब्जा एक अमूर्त विचार है। द्वितीयतः कब्जा शुद्ध रूप से विधिक संकल्पना नहीं है। पुनः कब्जे के साथ, विधिक और सामान्य

निहित होता है, तो यह एकल स्वामित्व कहलाता है और जब यह एक से अधिक व्यक्तियों में निहित होता है तो सह-स्वामित्व कहलाता है। सह-स्वामित्व का एक उदाहरण भागीदारी है।

सह-स्वामित्व बंटवारा द्वारा एकल स्वामित्व में विघटित हो सकता है।

एकल स्वामित्व संपूर्ण विश्व के विरुद्ध व्यक्ति के अनन्य स्वामित्व को इंगित करता है और स्वामित्व के अधिकार के मामले में उत्पन्न होता है। अधिकार के स्वामित्व की स्थिति में, तथापि एकल स्वामित्व केवल अधिकार का स्वामित्व या परिबंध का सीमित अधिकार का स्वामित्व हो सकता है। इंग्लैंड में सह-स्वामित्व के दो मुख्य प्रकार हैं - सामान्य में स्वामित्व और संयुक्त स्वामित्व। दोनों के बीच मुख्य अंतर सह-स्वामित्वों में से किसी एक की मृत्यु के प्रभाव से संबंधित है।

हिन्दू विधि में सह-स्वामित्व (Co-ownership in Hindu Law):

हिन्दू विधि से सुपरिचित संयुक्त स्वामित्व अविभाजित मिताक्षरा (Mitakshara) के सदस्यों द्वारा संयुक्त संयुक्त जोत (joint holding) का एक विशेष प्रकार है।

यह संयुक्त स्वामित्व से भिन्नता रखता है क्योंकि सहभागियों (coparceners) को पुरूष शिशु के जन्म के साथ ही सहदायिकता का विस्तार होता है।

निहित और समाश्रित स्वामित्व (Vested and contingent ownership):

सामण्ड - स्वामित्व या तो निहित होता है या समाश्रित। यह निहित तब होता है जब स्वामी का हक पूर्व से ही पूर्ण रहता है, यह समाश्रित तब होता है जब तक उसका हक अपूर्ण रहता है किन्तु कुछ अपेक्षित शर्तें पूर्ण होते ही वह पूर्ण होने में सामर्थ्य है।

किसी संपत्ति के अन्तरण पर कोई हित विहित होता है, वहां पर हित व्यक्ति के हित में उत्पन्न किया -

1. कब यह कार्यान्वित होगा, इसके समय का बिना निर्दिष्ट किये हुये।
2. यह निर्दिष्ट करते हुए कि यह शीघ्र कार्यान्वित होगा।
3. किसी घटना के घटने पर जो अपरिहार्य हो।

पुरोभाव्य शर्त और उत्तरभाव्य शर्त (Condition precedent and condition subsequent):

पुरोभाव्य शर्त वह शर्त है जिसका पूरा होना एक अपूर्ण हक को पूर्ण कर देता है। उत्तरभाव्य शर्त वह शर्त है जिसके पूरा होने पर पहले से पूर्ण हो चुका हक समाप्त हो जाता है। पुरोभाव्य शर्त में वह स्वामित्व जो सशर्त या उस शर्त के पूरा होने पर पूर्ण हो जाता है। उत्तरभाव्य में वह स्वामित्व जो सशर्त समाप्त हो गया था उस शर्त के पूरा होने पर पूर्णतः समाप्त हो जाता है।

स्वामित्व के अन्तर्गत की रीतियां (Modes of acquisition of ownership):

स्वामित्व का मूल अर्जन

स्वामीहीन संपत्ति (res nullius) उदाहरण के लिए जंगली पशु।

व्युत्पादित अर्जन (Derivative)

जब स्वामित्व किसी पूर्ववर्ती स्वामी से व्युत्पन्न होता है तो इसे व्युत्पादित अर्जन कहा जाता है। इसके अन्तर्गत विरासत द्वारा स्वामित्व का अर्जन-निर्वसीयती (intestate) और वसीयती (testamentary) और जीवित व्यक्तियों के बीच अन्तरण (transfer inter vivos) क्रय, दान का प्रतिग्रहण आदि आता है।

सहायक (Accessory) अर्जन -

सहायक अर्जन में किसी ऐसी संपत्ति का स्वामित्व अर्जित किया जाता है जो किसी विद्यमान संपत्ति में अभिवृद्धि से आती है।

अर्थ भिन्न हो सकते हैं। सामान्य प्रयोग में बहुत शब्दों की तरह, कब्ज़ा खुली रचना (texture) का शब्द है।

ऐसी समस्याओं के लिए विधि की प्रत्येक प्रणाली अपना समाधान प्रदान करने के लिए स्वतंत्र है। प्रत्येक विधिक प्रणाली में विभिन्न विधिक प्रणालियों द्वारा स्वीकृत समाधान कब्ज़ा के विधिक संकल्प के अर्थ को प्रभावित करेगा। विधि के सभी क्षेत्रों में और सभी विधिक प्रणाली में, व्यर्थ एक परिभाषा खोजना, जो पद कब्ज़ा के अर्थों को संक्षिप्त करेगा, एक व्यर्थ अभ्यास होगा।

शब्द कब्ज़ा के भिन्न अर्थ हैं जो दिये गये संदर्भ पर निर्भर करता है जिसमें यह प्रयुक्त होता है। इस प्रकार, A एक कार रख सकता है, B उस कार के लिए वाद करने का अधिकार रख सकता है और C प्रतिष्ठा का उत्कृष्ट अर्थ रख सकता है।

विधिक अर्थ में, किसी भौतिक पदार्थ के कब्ज़े को ऐसे पदार्थ के अनन्य प्रयोग के लिए किसी दावे का निरंतर अभ्यास कहा जा सकता है।

कब्ज़े की कसौटियां (Test of possession):

विधि ने यह तय करने के लिए कतिपय कसौटियां अधिकथित की हैं कि क्या कोई पदार्थ किसी व्यक्ति के कब्ज़ा में है –

1. उसका कब्जे के विषयवस्तु के ऊपर सामान्य नियंत्रण अवश्य होना चाहिए। एक व्यक्ति अपने कोट को कब्ज़े में तब भी रख सकता है जब वह उसे लेकर कोट स्टैंड पर टांग देता है।
2. कब्ज़े के संबंध में एक अन्य कारक कब्ज़े में करने का एनीमस (आशय) है। कब्ज़ाधारी द्वारा उसके कब्ज़े या नियंत्रण से हस्तक्षेप रोकने के लिए उसे शेष संसार को अपवर्जित करने की सामर्थ्य भी होनी चाहिए।

   सामंड - इस कब्ज़ा के विचार के लिए दूसरों को अपवर्जित करना इतना महत्वपूर्ण है कि इसे कभी-कभी कोई चीज कब्ज़ा करने की संकल्पना के ही आवश्यक अंग के रूप में मानते हैं।
3. कब्ज़ा का अगला प्रभाव यह है कि सम्बद्ध व्यक्ति को कब्ज़े की विषयवस्तु पर कब्ज़ा करने का आशय होना चाहिए।
4. वह व्यक्ति जिसके पास आशय (एनीमस) है; आवश्यक नहीं है कि वह स्वामी हो। एक बार उसे कब्ज़ा करने का आशय हो जाता है तो यह कहा जा सकता है वह वस्तु उसके कब्ज़े में है।
5. यह आवश्यक नहीं है कि आशय (एनीमस) विनिर्दिष्ट हो; यह एक सामान्य आशय (एनीमस) हो सकता है। किसी दुकान के अर्थ में, सामान्य आशय (एनीमस) उद्देश्य को पूरा करेगा।
6. यह आवश्यक नहीं है कि आशय (एनीमस) पदार्थ पर किसी विधिक दावे पर आधारित हो। पदार्थ अविधिपूर्ण रूप से लिया गया हो सकता है, किन्तु ऐसा लेने वाले का अपेक्षित आशय (एनीमस) है तो पदार्थ पर इसका कब्ज़ा है।
7. कब्ज़ाधारी का दूसरों को उस वस्तु के उपयोग से अपवर्जित करने का आशय (एनीमस) अवश्य होना चाहिए।

कब्ज़े के आवश्यक तत्व –

कब्ज़ा के अन्तर्गत दो आवश्यक तत्व आते हैं - मानसिक और भौतिक। यह रोमन वकीलों के एनीमस और कार्पस से भिन्न है। मानसिक तत्व कब्ज़े का आशय (animus possidendi) के रूप में जाना जाता है, जबकि भौतिक तत्व को कब्ज़ाधीन वस्तु (corpus possessions) के रूप में जानते हैं। सामण्ड के अनुसार, पूर्ववर्ती के अन्तर्गत कब्ज़धीन वस्तु का उपयोग की शक्ति तथा प्रत्याशा (expection) के लिए आधार का अस्तित्व दूसरे इसके उपयोग में कोई हस्तक्षेप नहीं करेंगे की शक्ति, दोनों सम्मिलित होते हैं जबकि पश्चात्वर्ती के अन्तर्गत कब्ज़ाधीन वस्तु के अनन्य उपयोग

2. दूसरा व्यवहित कब्ज़ा वहां होता है जहां कोई वस्तु किसी व्यक्ति द्वारा अपनी ओर से साथ ही किसी दूसरे की ओर से भी धारण की जाती है, किन्तु वह बाद में कहे गए व्यक्ति के श्रेष्ठ अधिकार को मानता है, जो इसे मांग करने पर प्राप्त कर सकता है। श्रेष्ठ अधिकार रखने वाला व्यक्ति का उस पदार्थ का व्यवहित कब्ज़ा होता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई मुझसे एक पुस्तक उधार मांग कर ले गया है, तो मेरा उस पुस्तक पर व्यवहित कब्ज़ा है।
3. तीसरे प्रकार का व्यवहित कब्ज़ा वहां होता है जहां वस्तु पर अव्यवहित कब्ज़ा ऐसे किसी व्यक्ति का होता है जिसका उस पदार्थ पर तब तक दावा है जब तक कुछ समय न बीत जाये या जब तक कोई शर्त पूरी न हो जाये। उदाहरण के लिए, यदि संपत्ति किसी निश्चित समय के लिये उधार दी गई है।

व्यवहित कब्ज़ा के सभी मामलों में दो व्यक्ति एक ही समय में एक ही पदार्थ पर कब्ज़ा रखते हैं। इस प्रकार दोहरा कब्ज़ा स्वामी और सेवक आदि में विद्यमान रहता है।

प्रतिकूल कब्ज़ा (Adverse possession):

कब्ज़ा का प्रतिकूल होने के लिए, दूसरे व्यक्ति के स्वामित्व पर आक्रमण अवश्य होना चाहिए, इसे निरन्तरता और सार्वजनिक (publicity) में भी वास्तविक, अनन्य और पर्याप्त होना चाहिए। जब ऐसी शर्तें पूरी नहीं होती हैं तब कब्ज़ा प्रतिकूल कहलाता है।

दूसरे शब्दों में, प्रतिकूल कब्ज़ा तब उत्पन्न होता है जब कब्ज़ाधारी दूसरे की भूमि पर अनन्य अधिकार का दावा करता है, जो उसके कब्ज़े में नहीं होता। प्रतिकूल कब्ज़ा की संकल्पना विधि में महत्वपूर्ण है क्योंकि जब कोई किसी संपत्ति पर विधि द्वारा अपेक्षित अवधि के लिए प्रतिकूल ढंग से कब्ज़ा की जाती है या उसका ग्रहण किया जाता है, तो यह सच्चे स्वामी के हक को विफन कर देता है और उस व्यक्ति में हक उत्पन्न करता है जो प्रतिकूल कब्ज़ा किये हुये है। प्रतिकूल कब्ज़ा सूत्र 'प्रेसेशन इज नाइन प्वांइट ऑफ दे लॉ' का एक उदाहरण है।

तथ्यत: कब्ज़ा और विधित: कब्ज़ा –

कब्ज़ा तथ्यत: (de facto) या विधित: (de jure) हो सकते हैं। इस प्रकार, A एक भूखंड का धारण करता है, यह उसका विधित: कब्ज़ा है क्योंकि उसकी भूमि पर कब्ज़ा करने का अधिकार है। आगे, यदि वह इसे B को किराये पर देता है, यह कब्ज़ा भी विधित: है क्योंकि B भी विधिपूर्वक उसका उपभोग करने का अधिकारी है। एक अतिक्रमणकारी तथ्यत: कब्ज़ा में हो सकता है परन्तु विधित: कब्ज़ा में नहीं।

1. कब्ज़ा प्राय: तथ्यत: और विधित: दोनों में अस्तित्व में हो सकता है।
2. कब्ज़ा तथ्यत: में विद्यमान हो सकता है किन्तु विधित: में नहीं।
3. कब्ज़ा विधित: में विद्यमान हो सकता है न कि वस्तुत:। इसे ही तथ्यत: (constructive) कब्ज़ा कहते हैं।

कब्ज़ा और स्वामित्व –

कब्ज़ा और स्वामित्व में भिन्नता है। कब्ज़ा का अस्थायी अवधि है जबकि स्वामित्व स्थायी, पूर्ण और अवशिष्ट है।

कब्ज़े का अर्जन करने की रीतियां –

1. लेना (taking) – पूर्ववर्ती कब्ज़ाधारी की सहमति के बिना कब्ज़ा अर्जित करना। यह लेना उचित या सदोष हो सकता है।
2. पूर्ववर्ती कब्ज़ाधारी के सहयोग और सहमति से परिदान और यह वास्तविक और आन्वयिक (constuctive) हो सकता है।

वास्तविक परिदान (Actual delivery):

वास्तविक परिदान का अर्थ है अव्यवहित कब्ज़े का अन्तरण। A B को एक घड़ी परिदान करता है, यह B को कब्ज़े का वास्तविक परिदान है।

आन्वयिक परिदान (Constructive delivery):

वह सब जो वास्तविक परिदान नहीं है, आन्वयिक परिदान होता है। कब्जे के आशय में मामूली परिवर्तन अपेक्षित होता है। आन्वयिक परिदान तीन प्रकार के हैं -

1. उस व्यक्ति को किसी पदार्थ के व्यवहित कब्जा का अभ्यर्पण करना जो पहले से ही इसके अव्यवहित कब्जा में होते हैं।
2. व्यवहित कब्जा का अन्तरण जबकि अव्यवहित कब्जा अन्तरक में कामयाब रहता है।
3. प्रायश्चित (atonement) - व्यवहित कब्जा का अन्तरण करना जबकि अव्यवहित कब्जा किसी तीसरे व्यक्ति के हाथ में होता है।

कब्जा के विधिक परिणाम -

1. प्रथम दृष्ट्या कब्जा स्वामित्व के हक का साक्ष्य होता है, किसी पदार्थ के कब्जाधारी को नाम लिया जाता है कि वह उसका स्वामी है।
2. विधि द्वारा निर्धारित अवधि के लिए प्रतिकूल कब्जा अच्छा हक है यहां तक संपत्ति के लिए भी जो मूलतः किसी अन्य के अधिकार में है।
3. कब्जा का अन्तरण स्वामित्व के अन्तरण के मुख्य रीतियों में से एक है।
4. किसी पदार्थ का सर्वप्रथम कब्जा, जो अब तक किसी के अधिकार में नहीं है (स्वामीहीन संपत्ति), एक अच्छा हक या अधिकार है।
5. किसी पदार्थ के सदोष कब्जाधारी का, उस वस्तु पर यथार्थ स्वामी के सिवाय संपूर्ण विश्व के विरुद्ध एक श्रेष्ठ दावा होता है।
6. कब्जा ऐसी प्रभावकारिता का हो कि कोई कब्जाधारी कुछ मामलों में किसी अन्य को श्रेष्ठ हक दे दें।

कब्जा का महत्व - मामले

1. *मेरी बनाम ग्रीन (1843)* - वादी ने एक दराज वाली मेज खरीदा और उस पर उसका कब्जा हो गया। उसने गुप्त दराज में विक्रेता को कुछ रूपया पाया जिसका उसने विनियोग कर दिया। जब वादी ने उसे विक्रेता से अपने कब्जे में लिया था तो रूपये के संबंध में उसका कोई आशय (animus) नहीं था। वह रूपये पर कब्जा नहीं कर सकता था। धारित किया गया कि वादी ने चोरी कारित किया था।
2. *ब्रिजेज बनाम हाक्सवर्थ* - इस मामले में एक ग्राहक की एक पाकेट बुक प्रतिवादी दुकानदार की फर्श पर छूट गई। वादी को (जो ग्राहक था) वह मिली। उसने उसे प्रतिवादी को उसके वास्तविक स्वामी को, जब उसका पता चले, लौटाने के लिए दिया।

   यह निर्णय दिया गया कि वादी को, न कि प्रतिवादी को सर्वप्रथम उस पुस्तक का कब्जा मिला (और इसलिये वास्तविक स्वामी के न मिलने पर यह उसकी हुई)। वादी द्वारा पुस्तक को पाने से पहले प्रतिवादी को इसके अस्तित्व का पता नहीं था, इसलिए प्रतिवादी को आशय नहीं था और परिणामस्वरूप उसका उस पर कब्जा नहीं था।
3. *साउथ स्टेफोर्डशायर वाटर वर्क्स कंपनी बनाम शर्मन* - इस वाद में उपर्युक्त उद्धरण सानुमोदन उद्धृत किय गया था और मामला इसी सिद्धान्त पर विनिश्चित किया गया था। इस मामले में वादी कंपनी का अपनी भूमि पर एक तालाब था। उन्होंने प्रतिवादी को उस तालाब की सफाई करने के लिए लगाया (employed)। प्रतिवादी को सफाई के कार्य में तालाब के तल में सोने की अंगूठियां मिलीं। कंपनी और प्रतिवादी के बीच इन अंगूठियों के हक के बारे में विवाद खड़ा हो गया।

   यह निर्णय दिया गया कि कंपनी का (तालाब के स्वामी होने के कारण) उस समय अंगूठियों पर कब्जा था जब ये प्रतिवादी को मिलीं, और इसलिए प्रतिवादी को उनमें कोई हक प्राप्त नहीं हुआ और वादी कंपनी उनको वापस पाने की हकदार थीं।

4. *हन्नाह बनाम पील* - इस मामले में *ब्रिजेज बनाम हाक्सवर्थ* में दिए गये विनिश्चय का अनुसरण किया गया था। एक सैनिक को एक मकान में ठहराया गया था। वह मकान एक ऐसे व्यक्ति का था जिसने उसे किसी अन्य से क्रय किया था किन्तु वह कभी भी उसके दखल में नहीं रहा था। सैनिक को खिड़की के फ्रेम के सिरे पर एक ब्रोच (रत्नजड़ित पिन) मिला। उस व्यक्ति ने जिसका वह मकान था उसे सैनिक से ले लिया और उसे बेच दिया।

यह निर्णय दिया गया कि सैनिक उससे नुकसानी पाने का हकदार था क्योंकि उसका (सैनिक का) पूर्ववर्ती कब्जा था। मकान के स्वामी को उस ब्रोच की कोई जानकारी नहीं थी और इसलिये उसका इस पर कब्जा नहीं था।

5. *अकुमेल्ला पंचायत बोर्ड बनाम बेंकय्या रेड्डी* - एक सार्वजनिक शौचालय पंचायत बोर्ड के नियंत्रण में था। प्रतिवादी ने बोर्ड को कुछ निर्माण कार्य करने से रोक दिया।

निर्णय दिया गया कि बोर्ड कब्जे की घोषणा का हकदार था।

6. *हिब्बर्ट बनाम मेकिर्नर* - इस में यह निर्णय दिया गया था कि गोल्फ-भूमि पर खिलाड़ियों द्वारा खोदे गए गोल्फ बाल्स-क्लब में के कब्जे में थे क्योंकि दूसरों को गोल्फ-भूमि से अपवर्जित करने के उनके सामान्य आशय के अन्तर्गत उनका गोल्फ बाल्स के लिये आशय भी था।

कब्जा पाने का उपचार (Possessory remedies):

वे विधिक उपचार जो कब्जा की संरक्षण के लिए विधमान होते हैं। यहां तक स्वामित्व के विरुद्ध भी। जबकि सांपत्तिक उपचार वैसे उपचार हैं जो स्वयं स्वामित्व के संरक्षण के लिए उपलब्ध होते हैं।

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 9 के अधीन कब्जे का अधिकार विधि से संरक्षण प्राप्त करता है।

कब्जे की संरक्षण के लिए तीन मुख्य कारण हैं -

1. कब्जे की संरक्षण शांति की रक्षा कायम रखकर आपराधिक विधि में सहायता करती है।

सेविग्नी ने उचितपूर्वक सम्प्रेक्षित किया है कि कब्जे की संरक्षा का नागरिकों और उनकी संपत्तियों के संरक्षण के लिए बड़ा अभिलाभ है।

2. कब्जे की अपकृत्य विधि के भाग के रूप में संरक्षा की जाती है।
3. कब्जे की संपत्ति की विधि के रूप में भी संरक्षा की जाती है।

केर्न्स (Cairns) - कब्जे की मूलतः अपराध और अपकृत्य की विधि में सहायता करने के लिए कब्जे की संरक्षा की जाती है।

न्याय-प्रशासन (Administration of Justice):

न्याय-प्रशासन राज्य का एक अनिवार्य कार्य है।

सामण्ड - यह राजनीतिक समुदाय के भीतर राज्य के भौतिक बल द्वारा अधिकार का कायम रखना है।

लाभ (Advantages):

1. यह न्याय के प्रशासन में एकरूपता लाता है।
2. विधि नागरिकों को विदित रहती है। यह उनको उनके अनुसार अपने आचरण को विनियमित करने के लिए समर्थ बनाता है।
3. नियम नियत होते हैं। यह न्यायाधीशों को विधि को एक रूप में लागू करने में सहायता देता है।
4. न्याय, विधि के नियत सिद्धांतों के अनुसार किया जाता है। यह निष्पक्षता और समता सुनिश्चित करता है।

5. विधि के नियम समुदाय की समवेत इच्छा (collective will) को प्रस्तुत करते हैं।
6. यह न्याय-प्रशासन विधि में एकरूपता और सुसंगति लाता है और इससे विधि का एक प्रणालीबद्ध विकास होता है।

हानियां (Disadvantages):

न्याय के प्रशासन की कुछ हानियां भी हैं –

1. यह विधि को अनमनीय (right) बना देता है।
2. विधि रूढ़िवादी होने को उन्मुख होती है।
3. विधि बहुत औपचारिक हो जाती है।
4. विधि बहुत जटिल (complex) बन जाती है।

सामण्ड – विधि निस्सन्देह ही अपेक्षाकृत बड़े अनिष्ट (evil) के लिये एक उपचार है, किन्तु अपने साथ यह अनिष्ट भी लाती है।

न्याय प्रशासन का विभाजन (Division of Administration of justice):

(1) सिविल (civil) (2) दाण्डिक (criminal)

सिविल न्याय (civil justice) – प्राथमिक अधिकार और गौण (secondary) अधिकार।

1. **प्राथमिक अधिकार** –

प्राथमिक अधिकार वे होते हैं जिनका अस्तित्व इस रूप में होता है औरउनका स्रोत किसी अपकार में नहीं होता।

2. **गौण या उपचार संबंधी अधिकार** –

ये वे अधिकार होते हैं जो किसी (प्राथमिक) अधिकार के उल्लंघन पर अस्तित्व में आते हैं।

सिविल न्याय का प्रशासन दो प्रकार का होता है –

1. **विनिर्दिष्ट रूप से लागू किया जाना (Specific enforcement):**

विधि का प्रथम उद्देश्य प्राथमिक अधिकारों को प्रवर्तित करना होता है। जहां स्वयं प्राथमिक अधिकारों को लागू किया जा सकता है वहां उस प्रयोजन के लिये किसी अनुशास्तिकारी अधिकार का प्रश्न नहीं होता। किसी प्राथमिक अधिकार के लागू होने के मामले वे होते हैं जहां किसी प्रतिवादी को किसी संविदा का पालन करने के लिये, या कोई ऋण अदा करने के लिये बाध्य किया जाता है। प्राथमिक अधिकार का लागू होना 'विनिर्दिष्ट' रूप से लागू होना कहलाता है।

2. **अनुशास्ति के रूप में लागू किया जाना (Sanctional enforcement):**

तथापि ऐसे मामले होते हैं, जहां प्राथमिक अधिकार इस रूप में प्रवर्तित नहीं हो सकते। ऐसे मामलों में अनुशास्तिकारी अधिकार प्रवर्तित किये जाते हैं। सामण्ड अनुशास्तिकारी अधिकारों के प्रवर्तन को 'अनुशास्तिक प्रवर्तन' कहता है। अनुशास्तिकारी अधिकार दो प्रकार के मामलों में प्रवर्तित किये जाते हैं

1) अनुशास्ति के रूप में लागू होने के पहले प्रकार के मामले वे हैं जहां प्राथमिक अधिकार को लागू करना संभव नहीं होता। उदाहरण के लिये, यदि 'क' अपनी उपेक्षा (negligence) के कारण 'ख' के मकान को जला देता है तो 'ख' का संपत्ति का अर्थात् मकान का अधिकार समाप्त हो जाता है और इसका विनिर्दिष्ट प्रवर्तन नहीं हो सकता। इस मामले में केवल अनुशास्ति अधिकार का ही प्रवर्तन किया जा सकता है। 'ख' को 'क' के मकान के मूल्य को प्राप्त करने का अधिकार है।
2) दूसरे प्रकार के मामले जहां अनुशास्ति के रूप में लागू किया जाना होता है वे हैं जिनमें यद्यपि विधि प्राथमिक अधिकार को लागू कर सकती है किन्तु यह उसे नीति के एक विषय के रूप में लागू नहीं करती और केवल नुकसानी दिलाती है। उदाहरण के लिये, 'क' ने

'ख' से विवाह करने का वचन दिया है किन्तु वह अपने वचन को पूरा नहीं करना चाहता। यद्यपि विधि 'क' को अपना वचन पूरा करने के लिये बाध्य कर सकती है, किन्तु यह ऐसा नहीं करेगी, और यह 'ख' को अनुशास्तिकारी अधिकार अर्थात्, नुकसानी के द्वारा अनुतोष प्रदान करेगी जो 'क' को 'ख' को देना होगा। कुछ मामलों को छोड़कर अनुशास्तिकारी अधिकार उस व्यक्ति से धन प्राप्त करने के दावे का होता है जिसने अपकार किया है।

विनिर्दिष्ट रूप से लागू होने के मामलों में विधि अपकारी द्वारा यथा अपेक्षित वस्तुस्थिति को स्थापित करने या लाने के लिए अग्रसर होती है और मूल वस्तु-स्थिति की प्रतिस्थापना (substitute) या समतुल्य (equivalent) के रूप में एक दूसरी वस्तु-स्थिति को लागू करने नहीं जाती। अनुशास्तिकारी अधिकारों को लागू करने में विधि का लक्ष्य होता है या तो -

1) प्रतिवादी (defendant) द्वारा किये गये अपकार के लिये उस पर आर्थिक शास्ति (pecuniary penalty) आरोपित करना, या
2) वादी (plaintiff) को (अपकारकर्ता से) उसके द्वारा उठाई गई क्षति के लिए प्रतिकर (compensation) दिलाना।

इस प्रकार वादी का अधिकार है या तो -

1. प्रतिवादी से धन प्राप्त करना जो प्रतिवादी पर एक शास्ति (penalty) के रूप का होता है, या
2. नुकसानी (damages) या आर्थिक प्रतिकर (pecuniary compensation) प्राप्त करना। यह निम्नलिखित स्वरूप का होता है -
   a) प्रत्यास्थापन (restitution), या
   b) दाण्डिक प्रतितोष (penal redress)।

यह विभाजन प्रतिवादी की दृष्टि से है, वादी की दृष्टि से नहीं है क्योंकि वादी के लिये यह सदैव उस हानि के लिये प्रतिकर होता है जो उसने उठाई है -

1. यदि प्रतिवादी को कोई फायदा वापस करने के लिए आदेश दिया जाता है जो उसने वादी से या वादी की कीमत पर उठाया है तो यह प्रत्यास्थापन होता है।
2. यदि विधि प्रतिवादी को इस बात के लिये बाध्य करती है कि वह वादी को उस हानि को चुकाये जो उसके सदोष कार्य (wrongful act) से बिना किसी प्रतिफल के वादी ने उठाई है, चाहे प्रतिवादी ने इससे कुछ लाभ उठाया हो या नहीं; तो यह एक दाण्डिक प्रतितोष (redress) है।

दाण्डिक न्याय का प्रशासन (Administration of criminal justice):

दाण्डिक न्याय का प्रयोजन अपकारी को दण्ड देना होता है।

दण्ड के सिद्धांत (Theories of punishment):

सिद्धान्तों के एक वर्ग का कहना है कि दाण्डिक न्याय का लक्ष्य राज्य और समाज की संरक्षा करना है और उसके कल्याण में वृद्धि करना है। सिद्धान्तों का दूसरा वर्ग कहता है कि दण्ड का प्रयोजन प्रतिकर (retribution) है। प्रथम वर्ग के सिद्धान्त समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण अपनाते हैं और वे राज्य के समष्टिवादी (collective) सिद्धान्त से सम्बद्ध हैं। दूसरे वर्ग के सिद्धान्त आचारमत या नैतिक आधार पर स्थित हैं और वे समस्या के प्रति व्यक्तिवादी (individualistic) दृष्टिकोण अपनाते हैं।

दण्ड के पांच सिद्धांत हैं -

1. निवारकार्थ दण्ड-सिद्धान्त (Preventive Theory)
2. निवारणार्थ दण्ड-सिद्धान्त (Deterrent Theory)
3. सुधारार्थ दण्ड-सिद्धान्त (Reformative Theory)

4. प्रतिकारार्थ दण्ड-सिद्धान्त (Retributive Theory)
5. प्रायश्चितार्थ दण्ड-सिद्धान्त (Expiatory Theory)

1. निवारकार्थ दंड सिद्धांत (Preventive Theory):
यह सिद्धांत कहता है कि दंड अपराधी को अपराध को दुबारा करने में असमर्थ बनाते या उसे निवारित (prevent) करने के प्रयोजन के लिये है।

2. निवारणार्थ दंड सिद्धांत (Deterrent Theory):
निवारणार्थ दंड दांडिक न्याय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयोजन है। सामण्ड का कहना है कि दंड सबसे पहले निवारणार्थ है और दंड विधि का मुख्य लक्ष्य अनिष्ट करने वाले को एक उदाहरण के रूप में बनाना है और उन सबको एक चेतावनी देना है जो उसके जैसे विचार वाले हों।

3. सुधारार्थ दंड सिद्धांत (Reformative Theory):
यह सिद्धांत दंड को एक सामाजिक साध्य के रूप में लेता है। यह अपराधी के व्यक्तित्व पर अधिक जोर देता है। यह खण्ड को स्वयं अपने में एक साध्य के रूप में नहीं लेता अपितु साध्य के एक साधन के रूप में लेता है। यह दण्डशास्त्र को एक समाजशास्त्रीय और उपयोगितावादी दृष्टिकोण से लेता है। अपराध एक व्याधिकृत (pathological) पथ-भ्रष्टता (aberration) है, अपराधी का साधारणतया उद्धार किया जा सकता है।
ई. एनम्मा बनाम स्टेट ऑफ आन्ध्र प्रदेश में न्यायाधीश अय्यर ने कहा कि "जहां हत्यारा अति किशोर है - दाण्डिक न्याय की दया उसकी सहायकता करती है।"

4. प्रतिकारार्थ दंड सिद्धांत (Retributive Theory):
इस सिद्धांत का स्रोत अपकारी के विरुद्ध प्रतिशोध (vengeance) की आदिम भावना में है। यह सिद्धांत दंड को स्वयं में एक साध्य मानता है। यदि कोई अनिष्ट किया गया है तो इसका निराकार या प्रतिकर केवल अपकारी के विरुद्ध एक अनिष्ट (अर्थात् दंड) करके किया जा सकता है।

5. प्रायश्चितार्थ दंड सिद्धांत (Expiatory Theory):
यह सिद्धांत प्रतिकारार्थ दंड सिद्धांत से जुड़ा हुआ है। दंड दिये जाने पर अपराध शुद्ध हो जाते हैं।

हीगल - इस सिद्धांत का समर्थन करता है। वह कहता है कि यह दंड किये गये अपकार के लिये अपराधी को प्रायश्चित कराता है। यह सिद्धांत नैतिक आचारों पर आधारित है और दंड के प्रयोजन के रूप में इसका महत्व नहीं है।

निवारक दंड सिद्धांत की आलोचना (सामण्ड) - जहां तक उपयोगितावादी दृष्टिकोण का प्रश्न है यह सिद्धांत शायद ही आवश्यक है। निवारक दंड की ऐसी संकल्पना पूर्णतः अनुज्ञेय (inadmissible) है। दंड स्वयं एक अनिष्ट (evil) है और इसे केवल अपेक्षाकृत अच्छाई के माध्यम से न्यायोचित ठहराया जा सकता है।

किटन - विकसित समाज में पुनः लोलक (pendulum) द्वारा किसी न किसी प्रकार के अपराध के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से नैतिक दृष्टिकोण की ओर घूमेगा।